

विदेश यात्रा शास्त्रीय या अशास्त्रीय ?



श्री चन्दन गोस्वामी



Other Publications

The Sacred Shilas

Shri Radha-Krishn's Family (Part 1 - The Animals)

Shri Radharaman Prakatya

Sandarshan (Monthly Magazine)

In Hindi

श्री राधारमण गीता

श्री कृष्ण कोटुकम्

श्री राधाकृष्ण कुटुम्ब (प्रथम भाग - पशु पक्षी)

श्री राधारमण प्राकर्ण्य

प्रेम पत्रिका

विदेश यात्रा शास्त्रीय या अशास्त्रीय?

In Spanish

Camino al amor: un comentario sobre el Narad Bhakti Sutra

Tinta espiritual

Sandarshan (Revista Mensual)

Contact

odev108@gmail.com

www.shriradharaman.com

<https://www.instagram.com/chandanjiofficial>

<https://www.youtube.com/chandanijofficial>

Copyright © 2025 Anupam Goswami. All Rights Reserved.

First edition

ब्राह्मण को म्लेच्छ देश जाना चाहिए या नहीं?	1
स्मृति भी मना करती हैं म्लेच्छदेश जाने को	9
क्या म्लेच्छ भाषा भाषी म्लेच्छ कहे गए हैं ?	13
म्लेच्छ कौन हैं?	18
म्लेच्छ जाति का जन्म	21
क्या सप्त द्वीपों पर म्लेच्छ नहीं रहते?	23
क्या धर्म स्मृति भी मना करती हैं विदेश जाने को?	34
क्या मनुस्मृति ने म्लेच्छ देश जाने की आज्ञा दी है?	50
क्या भक्त अपवित्र देशों को पवित्र कर सकता है?	60

दो शब्द

कभी-कभी कुछ लोग शास्त्रों को पूरा जाने बिना उनके अंशों को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि वे अपने मत को सिद्ध कर सकें। पर शास्त्र का सत्य लोगों के दिए हुए आधे अधूरे उद्घरणों में छिपा नहीं होता है। जो व्यक्ति भाव से शुद्ध नहीं, वह तो श्लोकों के अर्थों को भी विकृत कर देता है।

हाल ही में कुछ शिष्यों ने एक लेख दिखाया जिसमें विदेश यात्रा करने वाले एक आचार्य के विषय में अनुचित बातें लिखी गई थीं। ऐसा लेख यह बताता है कि हमारे समय में शास्त्र का अध्ययन कम और उसका उपयोग वाद-विवाद के लिए अधिक हो गया है। किसी आचार्य का मूल्यांकन उसके स्थान या यात्रा से नहीं, बल्कि उसके चरित्र, साधना और धर्म के पालन से होता है।

विदेश जाना कभी अधर्म का कारण नहीं रहा; अधर्म तब होता है जब पढ़ा लिखा द्विज ज्ञान का उपयोग ईर्ष्या फैलाने के लिए करे। क्योंकि आचार्य साक्षात् धर्ममूर्ति हैं, वे जहाँ भी जाते हैं, वहाँ धर्म की ज्योति ले जाते हैं। उनका उद्देश्य धर्म तोड़ना नहीं, धर्म का प्रचार और प्रसार है।

कुछ ही दिनों बाद कलिंग-प्रदेश के एक ब्राह्मण का संदेश भी आया। शास्त्र का आंशिक अध्ययन उन्हें उलझा रहा था, इसलिए उन्होंने वही पुराना प्रश्न रखा :- शास्त्र में विदेश यात्रा वर्जित कही जाती है, फिर आचार्य विदेश क्यों जाते हैं? यह प्रश्न नीयत से नहीं, अधूरी समझ से उठता है; इसलिए उत्तर भी आरोप से नहीं, स्पष्ट अर्थों से दिया जाना जरूरी था।

हमारे द्वारा शास्त्रों को आधा अधूरा और गलत तरीके से पढ़ना ही समाज को कमज़ोर कर रहा है। इसलिए जरूरी है कि भ्रम की परतें हटाई जाएँ और शास्त्र का वास्तविक, करुणामय अर्थ सबके सामने आए।

हमारी सनातनी परम्परा बहु-मतों को मानने एवं उसके बाद भी सबके प्रति प्रेम और सामंजस्य स्थापित करना सिखाती है। हमको कोई निज आपत्ति नहीं है पूर्वपक्ष को मानने वालों से, उनको बदलने के लिए ये लेख लिखा भी नहीं जा रहा है। आज की आवश्यकता है कि धर्म के प्रचार के लिए जो विप्रजन प्रयास करते हुए विश्व में सनातन की अलख जगा रहे हैं, उनको कहीं पूर्व पक्ष अपने भ्रम में न रोक दे। इस कारण से इस लेख का उद्देश्य है कि शास्त्र का प्रकाश फिर से अपने सही रूप में स्थापित हो सके और विदेश जाने वाले विप्रों को एक अद्भुत साहस पुनः मिल सके।

श्रीराधारमण चरणानुरागी

चन्दन गोस्वामी
कार्तिक कृष्णपक्ष पंचमी 2082

ब्राह्मण को म्लेच्छ देश जाना चाहिए या नहीं?

कलिंग ब्राह्मण- ब्राह्मण को म्लेच्छ देश नहीं जाना चाहिए। क्योंकि शास्त्र मना करता है,

**सिन्धोरुत्तरपर्यन्तं तथा दिव्यन्तरे शतम् ।
पापदेशाश्च ये केचित्पापरध्युषिता जनैः ॥
शिष्टैश्च वर्जिता ये च ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
गत्वा देशानपुण्यांस्तु कृत्स्नं पापं समश्नुते ॥**
(वायुपुराण 2.16.70-71)

सिन्धु के उत्तरीय प्रदेश, दिव्यन्तर के शत नामक देश एवं अन्य पापियों के प्रदेशों की, जहाँ जाने के लिए वेदों के पारङ्गत ब्राह्मण एवं शिष्टण्ण निषेध करते हैं तथा जहाँ जाने से पाप में वृद्धि होती है, ऐसे स्थान की यात्रा करने पर समस्त पाप का भागी होना पड़ता है।

**सिंधोरुत्तरपर्यन्तं तथोदीच्यन्तरं नरः ।
पापदेशाश्च ये केचित्पापैरध्युषिता जनैः ॥
शिष्टैस्तु वर्जिता ये वै ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
गच्छतां रागसंमोहत्तेषां पापं न गच्छति ॥**
(ब्रह्माण्डपुराण 2.14.81-82)

सिन्धु नदी के उत्तर पर्यन्त उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत जो कुछ पाप देश हैं, जो लोगों द्वारा पापों से भरे हुए हैं, जहाँ पर जाने से पाप बढ़ जाता है। जहाँ जाने के लिये वेदों के पारंगत ब्राह्मण एवं शिष्ट लोग निषेध करते हैं। उन स्थानों में राग (आसक्ति) और सम्मोहन के कारण वहाँ जाने वालों का

पाप दूर नहीं होता है अर्थात् पाप और अधिक बढ़ जाता है तथा उन अपुण्य अर्थात् पाप प्रदेशों में जाकर समस्त पापों का भागी होना पड़ता है। श्रीकरपात्री जी कहते हैं, “यहाँ पर तो पापदेश होने के कारण शिष्टों के लिए वह देश निषिद्ध कहे गए हैं। क्या देश काल परिस्थिति अनुसार उनका पापदेश होना समाप्त हो गया है, जो अब उपरोक्त श्रुतिस्मृति वचन लागू नहीं होंगे?”

उत्तर- बहुत सुंदर, आपने जिन श्लोकों को उद्धृत किया आईये उनको समझने का प्रयास करते हैं और सत्यता जानने का प्रयास करते हैं।

सबसे पहले वायु पुराण का उदाहरण लेते हैं। वायुपुराण के जो आपने आधे पौने श्लोक बताए, उसके लिए धन्यवाद। कुछ श्लोक हम बता देते हैं जो आपके लिए इस विषय को और स्पष्ट करेंगे।

**कारड़कराः कलिङ्गाश्च सिन्धोरुत्तरमेव च।
प्रनष्टाश्रमधर्माश्च वर्ज्या देशाः प्रयत्नतः ॥
(वायु पुराण 2.16.23)**

कारस्कर, कलिङ्ग, सिन्धु के उत्तरवर्ती देश एवं वे देश जहाँ पर वर्णाश्रम धर्म नष्ट हो चुका है, उसे भी प्रयत्नपूर्वक श्रद्ध में त्याग देना चाहिए।

**कारस्कराः पुलिन्दाश्च तथान्धशबरादय।
पीत्वा चापोभूतिलये गत्वा चैव युगन्धराम् ॥
सिन्धोरुत्तरपर्यन्तं तथा दिव्यन्तरे शतम्।
पापदेशाश्च ये केचित्पापरध्युषिता जनैः ॥
शिष्टैश्च वर्जिता ये च ब्राह्मणैर्वेदपारगैः।
गत्वा देशानपुण्यांस्तु कृत्स्नं पापं समश्नुते ॥**

(वायु पुराण 2.16.69-71)

कारस्कर, पुलिन्द, आन्ध्र, शबर जैसे अपवित्र देशों की यात्रा करने पर, भूतिलय (स्थान-विशेष) में जलपान करने पर तथा युगन्धर नामक स्थान की यात्रा करने पर, सिन्धु के उत्तरीय प्रदेश, दिव्यन्तर के शत नामक देश एवं अन्य पापियों के प्रदेशों की, जहाँ जाने के लिए वेदों के पारङ्गत ब्राह्मण एवं शिष्टगण निषेध करते हैं अथवा जहाँ इस प्रकार के ज्ञानी लोगों का सर्वथा अभाव रहता है तथा जहाँ जाने से पाप में वृद्धि होती है, ऐसे स्थान की यात्रा करने पर समस्त पाप का भागी होना पड़ता है।

आइये अब आपके ब्रह्माण्ड पुराण के वचनों की पड़ताल करते हैं,

कारस्करः कलिङ्गाश्च तथान्धशबरादयः ।
पीत्वा चापोभूतिलपा गत्वा चापि युगं धरम् ॥
सिंधोरुत्तरपर्यन्तं तथोदीच्यन्तरं नरः ।
पापदेशाश्च ये केचित्पापैरध्युषिता जनैः ॥
शिष्टैस्तु वर्जिता ये वै ब्राह्मणैल्येदपारगैः ।
गच्छतां रागसंमोहत्तेषां पापं न गच्छति ॥

(ब्रह्माण्ड पुराण 2.14.80-82)

कारस्कर, कलिङ्ग, आन्ध्र, शबर आदि स्थानों का जल पीकर तथा युगन्धर नामक स्थान की यात्रा पर सिन्धु नदी के उत्तर पर्यन्त उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत जो कुछ पाप देश हैं, जो लोगों द्वारा पापों से भरे हुए हैं, जहाँ पर जाने से पाप बढ़ जाता है। जहाँ जाने के लिये वेदों के पारंगत ब्राह्मण एवं शिष्ट लोग निषेध करते हैं। वायु पुराण एवं ब्रह्माण्ड पुराण में पापी देशों की चर्चा करी गई है जहाँ ब्राह्मणों को जाना नहीं चाहिए। यह श्लोक ब्रह्माण्ड

पुराण एवं वायु पुराण के श्राद्ध कर्म के अध्यायों के अंतर्गत आते हैं, जहाँ पर श्राद्ध करने की मना है। जिसमें कई अपवित्र देश भी बताए हैं।

कारस्कर¹- भारत में एक दक्षिणी जनजाति का राज्य, जो श्राद्ध के लिए अयोग्य बताया गया है

पुलिंद- प्राचीन भारत का एक क्षेत्र था, जो वर्तमान बुंदेलखण्ड के पश्चिमी भाग और सागर जिले के आस-पास था

आन्ध्र- गोदावरी और कृष्णा नदी के बीच आन्ध्र-देश है, जो वर्तमान आंध्र प्रदेश और उसके आसपास के क्षेत्रों से मिलकर बनता है

शबर- महाभारत अनुसार शबर देश दक्षिण को कहा जाता है

युगन्धर- महाभारत के विराट पर्व में बताया गया है, कुरुदेश के चारों ओर बहुत से सुरस्य जनपद हैं, जहाँ बहुत अन्न होता है। उनके नाम ये हैं- पान्चाल, चेदि, मत्स्य, शूरसेन, पटच्चर, दशार्ण, नवराष्ट्र, मल्ल, शाल्व, युगन्धर, विशाल कुन्तिराष्ट्र, सौराष्ट्र तथा अवन्ती

कलिंग (कलिङ्ग)- प्राचीन भारत का एक शक्तिशाली राज्य था, जो वर्तमान के ओडिशा, उत्तरी आंध्र प्रदेश और छत्तीसगढ़ के कुछ हिस्सों में फैला हुआ था

सिन्धु के उत्तरीय प्रदेश- जम्मू, कश्मीर एवं लद्दाख

दिव्यन्तर के शत नामक देश- ये हमको ज्ञात नहीं। इसकी अलग अलग व्याख्या हमको प्राप्त हुई परन्तु आप बता सकते हों तो बता दीजिएगा

अन्य पापियों के प्रदेशों- जितने बताए हैं उससे भी अधिक भारतवर्ष में वो मौजूद हैं।

विशेष-

¹ आज वर्तमान में ये सब पौराणिक स्थान कहाँ कहाँ हैं ये बताने की चेष्टा करी है, ऐसा हो सकता है कि कुछ स्थानों को सही से बता भी नहीं पाये होंगे क्योंकि हम इतिहासकार नहीं हैं। अगर आपको वर्तमान स्थानों को बताने में हमारी त्रुटि लगे तो उसके लिए क्षमा।

1। अब यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आपने जिन श्लोकों में “सिन्धु नदी के उत्तरवर्ती देशों” को पाप देश कहा है वो जम्मू कश्मीर एवं लद्दाख का इलाका है। उद्भूत श्लोकों का अभिप्राय किसी दिशा-विशेष या समूचे विश्व को पापमय बताना नहीं है। यह वही त्रुटि है जो तब जन्म लेती है जब कोई व्यक्ति शास्त्र के वाक्यों को प्रसंग से काटकर, अधूरा पढ़कर, अपने मत के अनुसार मोड़ देता है भौले-भाले मनुष्यों को भटकाने के लिए।

इन श्लोकों में “देश” शब्द का प्रयोग सामान्य भाषा में कहे जाने वाले देशों के लिए नहीं, अपितु भारतवर्ष के विशिष्ट प्रांतों के लिए हुआ है। जैसे यदि कहा जाए, “कावेरी के उत्तर के देश पापी हैं”, तो क्या इसका अर्थ यह होगा कि कावेरी के उत्तर स्थित सम्पूर्ण मध्य भारत, उत्तर भारत या हिमालय पार का हर देश पापी है? नहीं। ऐसी भाषा केवल कुछ नियत स्थानों पर संकेत करती है, न कि पूरी दिशा के प्रत्येक अंश पर, यही भाषा इन उपर्युक्त श्लोकों में परिलक्षित है। इसका प्रमाण आगे बताया भी गया है,

**सिंधुतटदाविकोर्विचन्द्रभागाकाश्मिर
विषयांच्छ ब्रात्यम्लेच्छशूद्रादयो भोक्ष्यन्ति ॥
(विष्णु पुराण 4.24)**

सिंधुतट, दाविकोर्वि, चन्द्रभागा, काश्मीर को पतित ब्राह्मण, म्लेच्छ तथा शूद्रादि भोगेंगे।

“सिन्धु के उत्तरवर्ती देश” “या सिन्धु तट” वास्तव में सिंधु नदी के ही उत्तरी भूभागों में स्थित हैं। शास्त्र वहाँ किसी “विदेश” की नहीं, बल्कि भारतवर्ष के भीतर के ही कुछ संस्कार-विहीन प्रदेशों की चर्चा कर रहे हैं। उन स्थानों

की, जहाँ वैदिक कर्म विशेषतः श्राद्धकर्म—वर्जित माने गए हैं, क्योंकि वहाँ ब्राह्मण का पतन सम्भावित है। अर्थात् शास्त्र के अनुसार यह “पापदेश” भारतवर्ष के ही अंग हैं, न कि उसके बाहर स्थित कोई परकीय भूमि के।

2। इन श्लोकों में भारत में ही कई पापी देशों की चर्चा करी है, जहाँ ब्राह्मण का पतित होना निश्चित है और श्राद्ध कर्म वर्जित हैं, तो करपात्री जी के वचन “क्या देश काल परिस्थिति अनुसार उनका पापदेश होना समाप्त हो गया है, जो अब उपरोक्त श्रुतिस्मृति वचन लागू नहीं होंगे?” तो आप कारस्कर, कलिङ्ग, आन्ध्र, शबर आदि देशों को पाप युक्त मानेंगे कि नहीं?

3। ऐसे एक बात गौर करने लायक है, शास्त्र ने भारत वर्ष के ही अलग-अलग भागों की चर्चा ही करी थी “जहाँ जाने के लिये वेदों के पारंगत ब्राह्मण एवं शिष्ट लोग निषेध करते हैं।” वर्तमान समय में, कितने ही ब्राह्मण, द्विज भी इन सब पापी स्थानों पर निवास करते हैं। जैसा कि हमको ज्ञात हुआ आप भी स्वतः कलिंग में रहते हैं। परन्तु आप भारत के इन सब स्थानों को तो पवित्र भी मानते हैं, यात्रा भी करते हैं और वहाँ के द्विजों को द्विज भी मानते हैं और श्राद्ध कर्म भी करते हैं। हमको पता है, अब आप मान ही नहीं पायेंगे शास्त्र के इन्ही श्लोकों को जब आपको ही वो पतित बता रहा है।

**म्लेच्छदेश तथा रात्री संध्यायां च विशेषतः॥
न भाद्रमा चरेताज्ञो स्लेच्छदेंश न च बजेत् ॥**
(शंखस्मृति 13.30)

म्लेच्छों के देश में, रात्रि में विशेष कर संध्या के समय में बुद्धिमान् मनुष्य श्राद्ध न करें और म्लेच्छों के देश में जाय भी नहीं।

कितना हास्यास्पद है ये जानना कि जो लोग म्लेच्छदेश गमन को निषेध बताते हैं और उसका पुरजोर विरोध करते हैं, उन्होंने इन शास्त्रों के वचनों को अनदेखा करके कितनी भ्रामक जानकारी फैलायी है। और अपने अनुयायियों को कोई नियम भी नहीं दिया है जो म्लेच्छदेशों में रहते हैं या वहाँ प्रवास पर जाते हैं। उन पूर्वपक्षियों के कितने ही ब्राह्मण आदि कथा, कर्मकांड, श्राद्ध आदि कृत्यों को करने के लिए उन सब म्लेच्छ देशों में जाते हैं जहाँ जाने से या वहाँ के लोगों के सम्पर्क में आने से भी ब्राह्मण पतित और अशुद्ध हो जाता है।

पूर्व के कई धर्मगुरुओं ने आधे-अधूरे श्लोकों को बता कर अपनी मनगढ़ंत बातों को करा था। इस कारण से आज सनातन धर्म विकृत हो रहा है।

**वेदे म्लेच्छदेशगमननिषेधो। यथान जनमियान् नान्तमियात् ।
(माध्यन्दिनीयवाजसनेयि शुक्लयजुर्वेदशतपथब्राह्मणे 14.4.1.11)**

वेद भी मना करता है इन देशों में जाने के लिए। इन पूर्वपक्षियों को अब धर्मसभा बुलानी चाहिए और समस्त ब्राह्मणों को इन म्लेच्छ देशों में जाने से रोकना चाहिए। धर्म को जानकर न बताने वाला भी उतना बड़ा पातकी है जितना अधर्म करने वाला।

**म्लेच्छदेशे बुद्धिमन्तो नरा वे म्लेच्छधर्मिणः ।
म्लेच्छाधीना गुणाः सर्वेऽवगुणा आर्यदेशके ॥ ।
म्लेच्छराज्यं भारते च तदष्टीपेषु स्मृतं तथा ।
(भविष्यपुराण, प्रतिसर्गपर्वणि 5.39-40)**

म्लेच्छ देशों में बुद्धिमान् होते हुए भी मनुष्य म्लेच्छ धर्मी होगें क्योंकि सभी गुण म्लेच्छों के अधीन और समस्त अवगुण (दोष) आर्य प्रदेशों में बिखरे रहेंगे। भारतवर्ष एवं उसके अन्य द्वीपों में म्लेच्छों का राज्य रहेगा।

स्मृति भी मना करती हैं म्लेच्छदेश जाने को

कलिंग ब्राह्मण- आप क्या कहेंगे इसके बारे में?

**न गच्छेन् म्लेच्छविषयम् (विष्णुधर्मसूत्रे 84/2)
म्लेच्छदेशो न च ब्रजेत् (शङ्खस्मृति 14/30)**

उत्तर- हमको अच्छा लगता अगर आप गूगल ना पढ़ कर शास्त्र पढ़े होते। दोनों स्मृतियों में पुनः श्राद्ध कर्म की चर्चा है, और कहा गया है किसी भी म्लेच्छ देश में श्राद्ध नहीं करें। यहाँ ब्राह्मण के विदेश न जाने की बात तो करी ही नहीं गई है। न ही उसके पतित होने की।

अब प्रश्न उठता है, शास्त्र के अनुसार म्लेच्छ देशों की स्थापना कहाँ-कहाँ हुई है?

**स्त्रीराज्याः सैन्धवा म्लेच्छा नास्ति का यवनास्तथा ।
पश्चिमेन च विज्ञेया माथुरा नैषधैः सह ॥
(गरुड़ पुराण, आचारकाण्ड 55.17)**

स्त्रीराज्य (संभवतः केरल, क्योंकि वराहमिहिर के अनुसार ये दक्षिण में मौजूद है), सिन्धु, म्लेच्छ और नास्तिक के, यवनों का देश माथुरा, निषधों का देश भारतवर्ष के पश्चिम भाग में हैं।

**लम्बका स्तननागाश्च माद्रगान्धारबाह्लिकाः ॥
हिमाचलालया म्लेच्छा उदीचीं दिशमाश्रिताः ॥
(गरुड़ पुराण, आचारकाण्ड 55.19)**

लम्बक (लंपाक, संभवतः अफ़गानिस्तान का क्षेत्र), स्वन (हिमालय के उपक्षेत्र), नाग (काठमांडू के पास का क्षेत्र), मद्र (नकुल सहदेव के मामा शल्य का स्थान, आज के पाकिस्तान के लाहौर-सियालकोट-मुल्लान के बीच का क्षेत्र उस काल का मद्रदेश था) , गान्धार (वर्तमान पाकिस्तान एवं अफ़गानिस्तान का क्षेत्र इसकी राजधानी तक्षशिला थी), वाहीक देश (एक देश जो भारत की उत्तरपश्चिम सीमा पर था, अफ़गानिस्तान से लगा हुआ) तथा हिमालय निवासी म्लेच्छों का देश भारत के उत्तर भाग में है।

यहाँ म्लेच्छों के देश, स्त्रीराज्य, सिन्धु और हिमालय बताये गए हैं। आगे कहा गया है,

यानि पद्मस्य पत्राणि भूरीण्यूर्ध्वं नराधिप ।
ते दुर्गमाः शैलचिता म्लेच्छदेशा विकल्पिताः ॥
(हरिवंश पुराण, भविष्यपर्व 12.11)

उस कमल के जो बहुत से ऊपरी दल हैं, वे ही पर्वतों से भरे हुए दुर्गम म्लेच्छ देश कहे गये हैं।

यानि पर्णाणि पद्मस्य भूरिपूर्वाणि पार्थिव ।
ते दुर्गमाः शैलचिता म्लेच्छदेशाः प्रकीर्तिताः ॥
(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड 40.11)

उस पृथ्वी रूपी पद्म के जो मुख्य दल हैं; वे ही दुर्गम पर्वतों से भरे हुए म्लेच्छों के देश कहे गये हैं।

महाकवि कालिदास के रघुवंश महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में भी रघु एवं हिमालय पर रहने वाले म्लेच्छ मनुष्यों की बात वर्णित है। जब ब्रह्मा ने

सृष्टि का निर्माण किया और जो भारतवर्ष के उत्तर में स्थित दुर्गम पहाड़ हुए वो स्थान म्लेच्छ देश कहलाये। वहाँ जाकर ब्राह्मण को श्राद्ध कर्म नहीं करना चाहिए। सोचिए शास्त्रों ने म्लेच्छों के देश कौन से बताए हैं, परन्तु पूर्वपक्ष ने कैसे इस ज्ञान को छुपा कर रखा और एक फरमान जारी कर दिया कि विदेश यात्रा पर जाने वाला ब्राह्मण, ब्राह्मण नहीं है, गुरु गुरु नहीं है?

सप्त चैताः प्लावयन्ति वर्षन्तु हिमसाह्यम्।
 प्रसूताः सप्त नद्यस्तु शुभा बिन्दुसरोद्धवाः॥
 तान्देशान् प्लावयन्ति स्म म्लेच्छप्रायांश्च सर्वशः।
 सशैलान् कुकुरान् रौध्रान् बर्बरान् यवनान् खसान्॥।
 (मत्स्य पुराण 121.42-43)

ये गंगा की सातों धारायें हिमवर्ष को सींचती हैं और यही सातों कल्याणदायिनी नदियाँ (नलिनी, हादिनी, पावनी, सीता, चक्षु, सिन्धु और भागीरथी) बिन्दु सरोवर से निकली हुई हैं। ये प्रायः उन म्लेच्छों के देशों को सींचती हैं, जो पहाड़ियों से युक्त कुकुर, रौध्र, बर्वर, यवन, खस, पुलिक, कुलत्थ, तथा अंगलोक्य प्रभृति प्रदेश कहे जाते हैं।

ततः सिद्धवटे भद्रे गत्वा वै त्रिंशयोजनम्।
 म्लेच्छमध्ये वरारोहे हिमवन्तसमाप्तिः॥
 (वराह पुराण, लोहार्गल क्षेत्र का माहात्म्य, 7)

वराह देव कहते हैं, हे सुन्दरि! हे भद्रे! वहाँ से तीस योजन जाने पर म्लेच्छों के देश के मध्य हिमालय पर स्थित में एक गुह्य स्थान है। (वर्तमान में लोहार्गल क्षेत्र, राजस्थान के अरावली घाटी पर स्थित है जो शेखावठी का क्षेत्र है।)

तो हे कलिंग देव, आप एक बात बताइये, यहाँ तो भगवान कह रहे हैं, म्लेच्छों के देश के मध्य यह तीर्थ उपस्थित है। तो अगर उस तीर्थयात्रा पर गए तो म्लेच्छों के देश से ही जाना होगा, सत्यता में तो उस ब्राह्मण को भी म्लेच्छों के देश जाने वाला कहा जाएगा और अपने धर्म से वो च्युत हो जाएगा, क्योंकि पूर्वपक्ष तो म्लेच्छों के देश किसी भी तरह जाने के लिए मना करता है?

इसके इतर, हम सब के पूर्वचार्य भी इन सब स्थानों पर गए हैं जिनको म्लेच्छों के देश कहा जाता है। अगर शास्त्र को प्रमाण मानेंगे तो हम सब के समस्त पूर्वचार्य भी अपने धर्म से च्युत हो चुके थे क्योंकि उन सब ने इन सब स्थानों पर यात्रा करी थी, धर्म का प्रचार किया था, अपने मठों को स्थापित किया और उन स्थानों पर रहे भी थे। सो शास्त्रों के आधार पर तो म्लेच्छों के देश इसी भारतवर्ष में ही स्थित हैं। अतः शास्त्र इस पृथ्वी के समस्त देशों को म्लेच्छ देश कह ही नहीं रहे।

क्या म्लेच्छ भाषा भाषी म्लेच्छ कहे गए हैं ?

कलिंग ब्राह्मण- शास्त्रों में म्लेच्छ भाषा बोलने वाले को भी म्लेच्छ कहा गया है। अंग्रेजी म्लेच्छ भाषा है और आप उसको बोलते हैं।

उत्तर- आइये ये समीक्षा करते हैं कि म्लेच्छ भाषा किसको बोलते हैं?

क्योंकि जैसा पहले बताया हुआ है कि म्लेच्छ देश भारतवर्ष के कई जगह स्थित थे और वर्तमान में जो भाषाएँ उक्त प्रदेशों में चलती हैं, उसको भी कुछ लोग म्लेच्छ भाषा बोलते हैं। परन्तु वर्तमान के बुद्धिजीवी अंग्रेजी, उर्दू, फारसी आदि को म्लेच्छ भाषा बताते हैं। पुराण में एक वचन भी प्राप्त होता है।

**देवार्दनं वेदभाषः नष्टा प्राप्ते कलौ युगे ।
तल्लक्षणं शृणु मुने म्लेच्छभाषाश्चतुर्विधाः ॥
ब्रजभाषा महाराष्ट्री यावनी च गुरुण्डिका ।
तासां चतुर्तक्षविधा भाषाश्चान्यास्तथैव च ॥**
(भविष्य पुराण)

देवों की पूजा और वेदभाषा का नष्ट होना कलियुग में बताया गया है, मुने! म्लेच्छ भाषा चार प्रकार की होती है। ब्रजभाषा, मराठी, यवनों की भाषा और गुरुण्डिका ये म्लेच्छ भाषा के चार भेद हैं।

वैसे तो यहाँ इन चार भाषाओं को म्लेच्छ भाषा बताया गया है, परन्तु आज के ज्ञानविदों के द्वारा भविष्य पुराण के अधिकांश अंश प्रक्षिप्त ही बताए जाते हैं। अगर मान भी लिया जाए कि ये प्रक्षिप्त नहीं भी हैं तो कुछ प्रश्न

इन श्लोकों पर उठते हैं। क्योंकि सूरदास आदि रसिकाचार्यों की बृजभाषा मुख्य वाणी रही है। महाभारत में विदुर आदि को म्लेच्छ भाषा का ज्ञान था तब ये उपर्युक्त चार भाषाएँ संसार में मौजूद ही नहीं थी। भगवान् श्रीकृष्ण ने जिन चौसठ विद्याओं को गुरुकुल में प्राप्त किया उसमें एक म्लेच्छ भाषा (म्लेच्छितविकल्प) भी थी। पुनः उस समय ये चार भाषायें उस काल में नहीं थी। तो कैसे पता लगायें कि म्लेच्छ भाषा कौन सी थी? उसके लिए शास्त्रों को सही से जानना होगा।

**तेऽसुरा हेलयो हेलय इति कुर्बन्तः परावभूषः । तस्माद् ब्राह्मणेन न
म्लेच्छितवै नापभाषितवै । म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्दः । तेऽसुराः ।**
(पतंजलि महाभाष्यम् 1.1.1)

वे असुर हेलयः, हेलयः (हे शत्रुओं, हे शत्रुओं) चिल्लाते हुए पराजित हो गये। इसलिये ब्राह्मण को म्लेच्छन अर्थात् अपभाषण नहीं करना चाहिये। जो अपशब्द बोलते/कहते हैं वह निश्चय से म्लेच्छ हैं, असुर हैं।

महर्षि पतंजलि यहाँ संस्कृत के अपभाषण की चर्चा कर रहे हैं, अब संस्कृत का अपभाषण क्या होता है?

जब कालयवन् और उसकी सेना ने मथुरा नगरी पर आक्रमण करा तो कृष्ण आदि ने उन सबकी भाषा को सुना जिसमें वो बात कर रहे थे।

**पश्चातु लकारप्रकारं वर्णवारं म्लेच्छन्तस्ते
म्लेच्छा एव विनिश्चिता अनुमिताश्च ।**
(गोपाल चम्पू 2.14.42)

ये लोग पीछे तो अधिकतर “लकार” के प्रकार वाले वर्णसमूह को बोल रहे हैं, ये शूरवीर निश्चित ही “म्लेच्छ” हैं।”

(तात्पर्य- म्लेच्छ लोग लौकिक संस्कृत बोलते हुए अपनी बोली में प्रायः "लकार" का प्रयोग अधिक करते हैं)

वेदों की संस्कृत, लौकिक संस्कृत से अत्यंत भिन्न है। दोनों के लकारों के प्रयोग, व्याकरणिक नियमों और शब्द-रचना की प्रक्रिया में मूलभूत अंतर दिखाई देता है। इस भिन्नता को उनके शब्दकोशों और व्याकरण के अध्ययन से भी सहज समझा जा सकता है।

उदाहरण के लिए, लौकिक संस्कृत में "नमः" शब्द का अर्थ सामान्यतः नमस्कार करना, झुकना या आदर प्रकट करना माना जाता है। परन्तु वैदिक शब्दकोश निघण्टु तथा निरुक्त (3.9) में "नमः" का अर्थ इससे सर्वथा भिन्न बताया गया है—वहाँ यह आयु, ब्रह्म, वर्चस्, यशस् और अन्नम् के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

शतपथ ब्राह्मण में भी यह स्पष्ट रूप से कहा गया है—"अनन्नं नमः", अर्थात् अन्न ही नमः है। इस प्रकार, जहाँ लौकिक संस्कृत में "नमः" सम्मान अथवा अभिवादन की क्रिया को व्यक्त करता है, वहीं वैदिक संस्कृत में यह जीवन, तेज, यश और अस्तित्व के मूल तत्त्वों का सूचक शब्द है।

श्रुति परम्परा की संस्कृत अपने स्वरभेद, उच्चारण-नियम और अर्थ-गौरव में लौकिक संस्कृत की तुलना में कहीं अधिक सूक्ष्म और समृद्ध है।

आगे दिए जा रहे उदाहरण में भी विदुर जी संस्कृत का ही प्रयोग करके म्लेच्छ भाषा में युधिष्ठिर महाराज से कहते हैं-

**अलोहं निशितं शस्त्रं शरीरपरिकर्तनम्।
यो वेत्ति न तु तं घन्ति प्रतिघातविदं द्विषः॥**

अर्थ- एक ऐसा तीखा शस्त्र है, जो लोहे का बना तो नहीं है, परंतु शरीर को नष्ट कर देता है। जो उसे जानता है, उस शस्त्र के आघात से बचने का उपाय जानने वाले ऐसे पुरुष को शत्रु नहीं मार सकते।

संकेत- यहाँ महात्मा विदुर ने युधिष्ठिर को ये कहा है कि शत्रुओं ने तुम्हारे लिए एक ऐसा भवन तैयार करवाया है, जो आग को भड़काने वाले पदार्थों से बना है। शस्त्र का शुद्ध रूप सस्त्र है, जिसका अर्थ घर होता है।

**कक्षजः शिशिरघ्नश्च महाकक्षे बिलौकसः ।
न दहेदिति चात्मानं यो रक्षति स जीवति ॥**

अर्थ- घास-फूस तथा सूखे वृक्षों वाले जंगल को जलाने और सर्दी को नष्ट कर देने वाली आग विशाल वन में फैल जाने पर भी बिल में रहने वाले चूहे आदि जंतुओं को नहीं जला सकती - यों समझकर जो अपनी रक्षा का उपाय करता है, वही जीवित रहता है।

संकेत- वहाँ जो तुम्हारा पार्श्ववर्ती (सेवक) होगा, वह पुरोचन (दुर्योधन के कहने पर पुरोचन ने ही लाक्षा गृह का निर्माण करवाया था) ही तुम्हें आग में जलाकर नष्ट करना चाहता है। तुम उस आग से बचने के लिए एक सुरंग तैयार करा लेना।

तभी व्याकरण महाभाष्य में भी म्लेच्छों को वैदिक व्याकरण पढ़ने को कहा गया है।

**म्लेच्छाः मा भूम इत्यध्येयं व्याकरणं सम्यक् न जानीमश्चेत्
अपशब्दानाम् अयोग्य शब्दानां वा उच्चारणम् अपि भवितुम् अर्हति ।
(प्रथम आहिक)**

म्लेच्छ अर्थात् अशुद्ध संस्कृत भाषी न रहें, इसलिए व्याकरण पढ़ना चाहिये। क्योंकि जो व्यक्ति वैदिक व्याकरण का ज्ञान नहीं रखता, उसकी वाणी सहज ही म्लेच्छवत् (अशुद्ध और वेदविरुद्ध) बन जाती है।

म्लेच्छों ने एक नई भाषा बनायी जो अशुद्ध संस्कृत थी। बाहर की भाषाएँ कहाँ से म्लेच्छ कहीं गई हैं? अशुद्ध वैदिक संस्कृतभाषी को ही म्लेच्छ भाषा कहा गया।

विभिन्न कालखण्डों में जो आचार्य हुए और उन्होंने अपने उस काल अनुसार बाहर की भाषाओं को देखा, उनको म्लेच्छ भाषा का नाम दे दिया, परन्तु शास्त्र इससे बिलकुल विपरीत चर्चा करता है, अगर इस विषय को देखा जाये तो पता चलता है कि वैदिक संस्कृत को छोड़ कर वर्तमान में उपस्थित समस्त भाषाओं को म्लेच्छों की भाषा कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा।

म्लेच्छ कौन हैं?

कलिंग ब्राह्मण- म्लेच्छ ईसाइयों, मुसलमानों को कहा जाता है। म्लेच्छ कौन हैं आपके लिए?

उत्तर- यह “म्लेच्छ” शब्द की परिभाषा का अपभ्रंश है, वर्तमान में कुछ ब्राह्मण इस शब्द का प्रयोग किसी भी अन्य देश के निवासियों के लिए करते हैं। 400-500 वर्ष पूर्व कई आचार्यों ने मुसलमानों के लिए प्रयोग भी किया। पर प्रथन यह उठता है — वे मुसलमान राजा भी तो भारतवर्ष में ही शासन करते थे। न जाने कितने नवाबों ने इस भारत वर्ष पर राज किया। उन्होंने भारत के लोगों को धर्म परिवर्तन भी कराया। मथुरा को इस्लामाबाद, वृदावन को मोमिनाबाद कहा गया, आगरा और इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली), अहमदाबाद, हैदराबाद आदि उनके अधीन थे। तो क्या इसका अर्थ यह है कि आगरा, मथुरा, दिल्ली आदि जैसे स्थान उनके शासन में आने से म्लेच्छ देश बन गए? और क्या उन स्थानों पर जाने मात्र से कोई ब्राह्मण अपने धर्म से च्युत हो जाता था? पर इतिहास साक्षी है कि उसी कालखण्ड में समस्त सम्प्रदाय आचार्य भारत के सभी प्रदेशों में भ्रमण करते थे, प्रवचन करते थे और धर्म का प्रचार करते थे।

म्लेच्छ एक जाति है और शास्त्र म्लेच्छ देशों की भी चर्चा करता है। पहले यह समझना आवश्यक है कि म्लेच्छ कौन हैं, शास्त्रों के अनुसार। क्योंकि जिन पंथों का आप उल्लेख कर रहे हैं, वे तो सनातन धर्म से बहुत बाद में उत्पन्न हुए। भागवत में कहा गया है कि कालयवन स्वयं म्लेच्छराज था और वह तीन करोड़ म्लेच्छों के साथ भगवान श्रीकृष्ण पर आक्रमण करने आया था। युधिष्ठिर महाराज तो म्लेच्छों की भाषा भी जानते थे। तो जब न उस

समय मुसलमान थे, न ईसाई—तब वे म्लेच्छ कौन थे? म्लेच्छ एक जाति है, किसी जाति में जन्म लेने के लिए वैसे कार्य भी करने चाहिए, जिससे अगले जन्म में म्लेच्छ बन सकें। आइये जानते हैं, वह कर्म कौन से हैं।

**सुखदुःखसमायुक्ता व्याधिमन्तो भवन्त्युता ।
असंवीताः प्रजायन्ते श्म्लेच्छाश्चापि न संशयः ॥
(ब्रह्म पुराण 217.112)**

हे द्विजगण! जो आत्मा के सम्बन्ध से कोई धर्म नहीं जानता, पाप करने पर भी प्रायश्चित्तरूप धर्म का पालन नहीं करता, वह सुख-दुःख समायुक्त तथा रोगी होता है। निःसंशय रूपेण मर्यादा लंघनकारी म्लेच्छ जन्म लेते हैं।

**हरेरनैवेद्यभोजी कृमिकुण्डं प्रयाति सः ॥
स्वलोममानवर्षं च तद्गोजी तत्र तिष्ठति ॥
ततो भवेन्म्लेच्छजातिस्त्रिजन्मनि ततो द्विजः ॥
(ब्रह्मवैर्त पुराण, प्रकृति खण्ड 58-59)**

जो ब्राह्मण मत्स्यभोजी है, हरि के नैवेद्य को छोड़ कर व्यर्थ मांस भक्षण करता है, वह कृमिकुण्ड नरक में गमन करता है। जितने उसके देह में रोम हैं, उतने वर्ष तक वह कृमि को खाता है, उस नरक में रहता है। तदनन्तर म्लेच्छ योनि में तीन जन्म व्यतीत करके पुनः ब्राह्मण हो जाता है।

**चण्डालस्तुलसीस्पर्शी सप्तजन्मस्वतः शुचिः ।
म्लेच्छो गंगाजलस्पर्शी पञ्चजन्मस्वतः शुचिः ॥
(ब्रह्मवैर्त पुराण 2.31.42)**

जो तुलसी हाथ में लेकर झूठ बोलता है, वह सात जन्म तक चाण्डाल रह कर, तब पवित्र हो पाता है। जो गंगाजल हाथ में लेकर झूठी शपथ खाता है, वह पाँच जन्मों तक म्लेच्छ योनि भोग कर शुद्ध होता है।

ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्राः कुत्सिताः शौचवर्जिताः॥

जन्म तेषां म्लेच्छयोनौ वर्षाणामयुतं तथा।

(ब्रह्मवैर्वत पुराण, कृष्णजन्म खण्ड, 85.200-201)

जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र से कुत्सित रहते हैं एवं पवित्रता रहित हैं, वे दस हजार जन्मों तक म्लेच्छ योनि में रहते हैं।

इसके अलावा जो अपनी माँ के साथ दैहिक सम्बन्ध बनाएगा, ब्रह्मघाती होगा, अगम्या नारी के साथ सहवास करेगा, दान दी हुई वस्तु को वापस लेने वाला, अपने वचनों को न निभाने वाला आदि भी उन पाप कर्मों की सूची में आते हैं। जिनको करने के उपरांत म्लेच्छ जाति में व्यक्ति का जन्म होता है।

म्लेच्छ जाति का जन्म

कलिंग ब्राह्मण- आप म्लेच्छों को जाति अंतर्गत क्यों ला रहे हैं?

उत्तर- म्लेच्छ जाति उत्पन्न कैसे होती हैं?

क्षत्रियेण शूद्रायामृतुदोषेण पापतः ।
बलवन्तो दुरन्ताश्च बभूयुम्लेच्छजातयः ॥
अविद्वकर्णा: क्रूराश्च निर्भया रणदुर्जयाः ।
शौचाचारविहीनाश्च दुर्धर्षा धर्मवर्जिताः ॥
(ब्रह्मवैवर्त पुराण, 1.10.119-120)

इसी प्रकार के ऋतु दोष काल में समागम करने से क्षत्रिय पुरुष तथा शूद्र नारी के संयोग से बली तथा प्रचंड म्लेच्छ जाति वाले जन्मे। ये म्लेच्छ होकर कर्णछेदन नहीं करते थे। ये सभी क्रूर, दयाहीन थे। रण में अत्यन्त परिश्रम तथा उपाय के बिना जीते ही नहीं जाते थे। ये शौचाचार रहित, दुर्धर्ष तथा धर्महीन थे।

जातोऽम्बष्ठस्तु शूद्रायां निषादः पर्वतोऽपि वा ॥
माहिष्यः क्षत्रियाज्जातो वैश्यायां म्लेच्छसंजितः ॥
(गरुड़ पुराण, आचारकांड 96.2)

क्षत्रिय पुरुष तथा वैश्य कन्या से उत्पन्न सन्तान माहिष्य तथा क्षत्रिय पुरुष और शूद्रा कन्या से पैदा सन्तान उग्र नामक म्लेच्छ जाति कही जाती है।

उत्तराश्चापरे म्लेच्छा जना हि मुनिपुङ्गवाः ।

जवनाश्च सकाम्बोजा दारुणा म्लेच्छजातयः ॥
(पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड, 6.60)

उत्तर जनपद, म्लेच्छ जनपद, जवन, काम्बोज, तनपोषक, द्रोषक, कलिङ्ग ये सभी म्लेच्छों की जातियाँ हैं।

**शका जवनकाम्बोजाः पारदाः पहवास्तथा ।
कोलसप्याः समहिषा दाव्वर्वाश्चोलाः सकेरलाः ॥ ॥
सर्वे ते क्षत्रियास्तात् धर्मस्तेषां निराकृतः ॥
वशिष्ठवचनाद्राजन् सगरेण महात्मना ॥**
(हरिवंश पुराण, 1.14.18-19)

तात! जनेश्वर! शक, जवन, काम्बोज, पारद, कोलिसर्प, महिष, दर्द, चोल और केरल-ये सब क्षत्रिय ही थे। वसिष्ठजी के वचन से महात्मा सगर ने इन सबका संहार न करके केवल इनके धर्म को ही नष्ट कर दिया था॥

म्लेच्छ नाम प्रतिलोमजातीयाधिकाररहिताः शाबरपुलिंदादयः।
(मनुस्मृति, कुल्लुक भट्ट टीका 2.23)

म्लेच्छ शब्द उन लोगों के लिए प्रयोग किया गया है जो प्रतिलोम जातियों में उत्पन्न हुए हैं, जैसे शबर, पुलिंद आदि, जिन्हें वैदिक कर्म, यज्ञ, संस्कार आदि का अधिकार नहीं है।

विचारणीय प्रश्न है कि शास्त्रों ने इन सब जातियों को भारत में बताया है या विश्व के अन्य देशों में?

क्या सप्त द्वीपों पर म्लेच्छ नहीं रहते?

कलिंग ब्राह्मण- तो आपका यह मानना है कि भारत वर्ष को छोड़कर सब जगह म्लेच्छ नहीं रहते?

उत्तर- हमारे मानने एवं न मानने से कुछ नहीं होता है। पहले ये देखते हैं कि शास्त्र का क्या कहना है?

जैसे कुशद्वीप का वर्णन करते हुए महाभारत कहती है,

न तेषु दस्यवः सन्ति म्लेच्छजात्योऽपि वा नृप ।
(महाभारत, भूमि पर्व 13।15)

वहाँ दस्यु और म्लेच्छ जाति के लोग नहीं रहते हैं।

तो अब प्रश्न उठता है कि सप्त द्वीपों पर कौन रहता है? इसका वर्णन हम आगे करेंगे, उसको पढ़कर आप को पता चलेगा कि कैसे हमारे यहाँ के पूर्वपक्षी ब्राह्मणगण, आचार्यगण आदि ने शास्त्रों का सही ज्ञान न देकर कितनी भ्रांतियों को फैला रखा है। आजकल का प्रचलन भी हो गया है, जिस विषय में अधकचरा ज्ञान ही क्यों न हो, पर बोलना जरूर है।

विस्तार भय से हम सप्त द्वीपों में रहने वाले मनुष्यों एवं उनके गुणों का वर्णन सम्पूर्ण रूप से करने में असमर्थ रहेंगे, बस कुछ शास्त्र वचनों के द्वारा आपको यहाँ अपना मत सिद्ध करा जा रहा है।

१। शाकद्वीप

शाकद्वीपे च वर्षं ऋतव्रतसत्यव्रतानुव्रतनामानो
वाय्यवात्कमं भगवतं जपति ॥
(स्कन्द पुराण 1.37.62)

वहाँ चार वर्ण हैं। वह चार वर्ण इस प्रकार है- ऋतव्रत, सत्यव्रत, अनुव्रत तथा उपव्रत। वहाँ वायुमय भगवान् की उपासना की जाती है।

तद्वर्षपुरुषा ऋतव्रतसत्यव्रतदानव्रतानुव्रतनामानो भगवन्तं
वाय्यात्मकं प्राणायामविधूतरजस्तमसः परमसमाधिना यजन्ते ॥
(भागवत 5.20.27)

उस वर्ष के ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत और अनुव्रत नामक पुरुष प्राणायाम के द्वारा अपने रजोगुण और तमोगुण को क्षीण करके महान समाधि के द्वारा, वायुरूप श्रीहरि की आराधना करते हैं।

मगाश्च मागधाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा ।
मगा ब्राह्मणभूयिष्ठा मागधाः क्षत्रियास्तथा ।
वैश्यास्तु मानसास्तेषां शूद्रस्तेषां तु मन्दगाः ॥
विष्णु पुराण (2.4.69)

मग, मागध, मानस तथा मन्दग नामक 4 वर्ण हैं। इनमें मगगण सभी ब्राह्मणों की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं, मागध क्षत्रिय हैं, मानसगण ही वैश्य हैं तथा मन्दगगण शूद्र हैं।

२। कुशद्वीप

वर्णाश्च कुलिशकोविदाभियुक्तकुलकसंज्ञा जातवेदसं भगवंतं स्तुवन्ति
(स्कन्द पुराण 1.37.65)

वहाँ कुलिश, कोविद्, अभियुक्त तथा कुलक नामक वर्णचतुष्टय द्वारा
अग्निरूपी भगवान् की आराधना की जाती है।

यासां पयोमिः कुशद्वीपौकसः कुशलकोविदाभियुक्त
कुलकसंज्ञा भगवन्तं जातवेदसरूपिणं कर्मकौशलेन यजन्ते ॥
(भागवत 5.21.16)

इन नदियों के जल में स्नान करके कुशद्वीप निवासी, कुशल, कोविद्,
अभियुक्त, और कुलक वर्ण के पुरुष अग्नि स्वरूप भगवान् श्रीहरि का
यज्ञादि कर्म कौशल के द्वारा पूजन करते हैं।

टिप्पणी- यज्ञ आदि कर्म उस द्वीप पर मान्य हैं, जैसा भागवत का श्लोक
बता रहा है।

वर्णस्तत्रापि चत्वारो निजानुष्ठानतत्पराः ।
दमिनः शुष्मिणः स्नेहा मन्देहाश्च महामुने ॥
ब्रह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चानुक्रमोदिताः ॥
(विष्णु पुराण 2.4.38-39)

यहाँ भी अपने कर्म में तत्पर चार वर्ण हैं। हे महामुने! यहाँ दमी, शुष्मी, स्नेह
तथा मन्देहगण ही यथाक्रम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र कहे जाते हैं।

**परस्य ब्रह्मणः साक्षात्जातवेदोऽसि हव्यवाट् ।
देवानां पुरुषाङ्गानां यज्ञेन पुरुषं यजेति ॥**
भागवत (5.20.17)

वे लोग अग्नि की स्तुति करते हुए कहते हैं “हे अग्निदेव ! आप साक्षात् परब्रह्म को हविष्य पहुँचाने वाले हैं। अतएव आप परमपुरुष के अज्ञभूत देवताओं के यज्ञ के द्वारा परम पुरुष परमात्मा का ही यजन करें।”

३। क्रौञ्चद्वीप

वर्णश्च गुरुऋषभद्रविणदेवकसंज्ञाः ॥
आपोमयं भगवंतं स्तुवन्ति ॥
(स्कन्द पुराण 1.37.69-70)

यहाँ वर्णचतुष्टय हैं गुरु, ऋषभ, द्रविण तथा देवक। ये जलमय प्रभु की उपासना करते हैं।

यासामम्भः पवित्रममलमुपयुज्जानाः पुरुषऋषभद्रविणदेवकसंज्ञा
वर्षपुरुषा आपोमयं देवमपां पूर्णेनाज्जलिना यजन्ते ॥
(भागवत 5.20.22)

जिन नदियों के पवित्र जल का सेवन करने वाले वहाँ के पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवक नामक चार वर्णों वाले निवासी जल से पूर्ण अज्जलि के द्वारा जल के देवता की उपासना करते हैं ॥22॥

पुष्करः पुष्कला धन्यास्तिष्याख्याश्च महामुने ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शुद्राश्चानुक्रमोदिताः ॥
(विष्णु पुराण 2.4.53)

इस द्वीप में पुष्कर, पुष्कल, धन्य एवं तिष्य नामक लोग यथाक्रमेण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र कहलाते हैं।

4। शाल्मलि द्वीप

वर्णाश्च श्रुतधरवीर्यवसुंधरइषंधरसंज्ञा भगवंतं सोमं यजंति ॥

(स्कन्द पुराण 1.37.74)

यहाँ के चार वर्ण हैं श्रुतधर, वीर्यधर, वसुन्धर तथा इषन्धर। ये भगवान् सोम की आराधना करते हैं।

तद्वर्षपुरुषाः श्रुतधरवीर्यधरवसुन्धरेषन्धरसंज्ञा
भगवन्तं वेदमयं सोममात्मानं वेदेन यजन्ते ॥

(भागवत 5.20.11)

उन वर्णों में रहने वाले श्रुतधर, वीर्यधर, वसुन्धर और इषन्धर नाम के चार वर्ण वेदमय आत्मस्वरूप भगवान् चन्द्रमा की वेद मन्त्रों से उपासना करते हैं ॥11॥

शाल्मले ये तु वर्णाश्च वसन्त्येते महामुने ।
कपिलाश्चारुणाः पीताः कृष्णाश्चैव पृथक्पृथक् ॥
ब्रह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शुद्राश्चैव यजन्तितम् ।
भगवन्तं समस्तस्य विष्णुमात्मानमव्ययम् ।
वायुभूतं मखश्रेष्ठैर्यज्वनो यज्ञसंस्थितिम् ॥
(विष्णु पुराण 2.4.30-31)

शाल्मलिद्वीप में कपिल, अरुण, पीत तथा कृष्ण - ये पृथक्-पृथक् वर्ण निवास करते हैं। इनमें कपिलवर्ण ब्राह्मण हैं, अरुण क्षत्रिय, पीत वैश्य तथा कृष्ण शूद्र हैं। ये याज्ञिकगण सबको आत्मा, अव्यय, यज्ञाश्रय भगवान् वायुस्वरूप विष्णु का पूजन उत्तम यज्ञ से करते हैं।

५। प्लक्षद्वीप (गोमेद द्वीप)

वर्णाश्च हंसपतंगोर्ध्याचनसत्यांगसंज्ञाश्चत्वारो भगवन्तं सूर्यं यजन्ते॥

(स्कन्द पुराण 1.37.78)

यहाँ के चार वर्ण इस प्रकार हैं- हंस, पतम्, ऊर्ध्वाञ्चन तथा सत्याङ्ग। ये सूर्यरूपी भगवान् की अर्चना करते हैं।

मणिकूटोवऋकूटइन्द्रसेनो ज्योतिष्मान्सुपर्णो हिरण्यष्ठीवो मेघमाल इति

सेतुशैलाः । अरुणा नृम्णाङ्गिरसी सावित्री सुप्रभाता ऋतम्भरा

सत्यम्भरा इति महानदिः । यासां जलोपस्पर्शनविधूतरजस्तमसो

हंसपतङ्गोर्ध्यायनसत्याङ्गसंज्ञाश्चत्वारो वर्णाः सहस्रायुषो

विबुधोपमसन्दर्शनप्रजननाः स्वर्गद्वारं त्रया विद्यया भगवन्तं त्रयीमयं

सूर्यमात्मानं यजन्ते॥

(भागवत 5.20.4)

प्लक्षद्वीप में मणिकूट, वऋकूट, इन्द्रसेन ज्योतिष्मान् सुवर्ण हिरण्यष्ठीव और मेघमाला ये सात मर्यादा पर्वत हैं, एवं अरुणा, नृम्णा, आद्विरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतम्भरा और सत्यम्भरा ये सात महानदियाँ हैं। वहाँ हंस, पतम्, ऊर्ध्वाञ्चन और सत्याङ्ग नामक चार वर्ण हैं। उपर्युक्त नदियों में स्नान करने से, इनके रजोगुण और तमोगुण क्षीण होते रहते हैं। यहाँ के लोगों की आयु एक हजार वर्ष की होती है। इनके शरीर में देवताओं के समान थकान और पसीना आदि नहीं होते हैं। सन्तानोत्पत्ति भी उनके ही सदृश होती है। ये त्रयी विद्या के द्वारा तीनों वेदों में वर्णित, स्वर्ग प्राप्ति के साधनभूत आत्म स्वरूप भगवान् सूर्य की उपासना किया करते हैं।

वर्णाश्च तत्र चत्वारस्तान्निबोध वदामि ते ॥

**आर्यकाः कुरारश्चैव विदिश्या भाविनश्चे ते ।
विप्रक्षत्रिवैश्यास्ते शूद्राश्च मुनिसत्तम ॥**
(विष्णु पुराण 2.4.16-17)

यहाँ जो चार वर्ण हैं, उनको सुनें। हे मुनिश्रेष्ठ! वहाँ के चार वर्ण आर्यक, कुरु, विदिश्य तथा भावी कहे जाते हैं और क्रमशः वहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र हैं।

6। पुष्कर द्वीप

तत्र वर्णाश्च न संति केवलं समानास्ते ब्रह्म ध्यायन्ति ॥

(स्कन्द पुराण 1.37.84)

यहाँ वर्ण चतुष्टय रूपी वर्गभेद नहीं है। सभी एक ही वर्ण हैं तथा एकमात्र ब्रह्म का ही ध्यान करते रहते हैं।

तद्वर्षपुरुषा भगवन्तं ब्रह्मरूपिणं सकर्मकेण कर्मणाऽऽराधयन्तीदं

चोदाहरन्ति ॥

(भागवत 5.20.32)

वहाँ (पुष्करद्वीप) के निवासी ब्रह्मा रूप भगवान् श्रीहरि की ब्रह्मसालोक्यादि की प्राप्ति कराने वाले कर्मों से आराधना करते हुए इस प्रकार से स्तुति करते हैं ॥32॥

7। जम्बूद्वीप

स्कन्द पुराण अन्तर्गत अध्याय में जम्बूद्वीप के वर्णों की चर्चा नहीं करी गई है। परन्तु हमारे यहाँ के वर्ण प्रायः आपको पता ही हैं।

भागवत एवं विष्णु पुराण में जरब्र भारत की चर्चा करी है

अस्मिन्नेव वर्षे पुरुषैर्लब्धजन्मभिः शुक्ललोहितकृष्णवर्णेन स्वारब्धेन
कर्मणा दिव्यमानुषनारकगतयो बह्यः आत्मन आनुपूर्वेण सर्वा ह्येव
सर्वेषां विधीयन्ते यथावर्णविधानमपवर्गश्चापि भवति ॥

(भागवत 5.19.19)

इस भारत वर्ष में ही जन्म लेने वाले पुरुषों को अपने किए हुए सात्विक, राजस और तामस कर्मों के अनुसार अनेक प्रकार की देव, मनुष्य तथा नारकीय योनियाँ प्राप्त होती हैं। क्योंकि कर्मानुसार सभी जीवों को सभी योनियाँ प्राप्त होती हैं, इसी वर्ष में अपने-अपने वर्ण के लिए विहित धर्मों का अनुष्ठान करने से मोक्ष की भी प्राप्ति होती है।

भारतस्य वर्षस्य नवभादानशामय ।
इद्रद्वीपः कसेरुश्च ताप्रपर्णा गभस्तिमान् ॥
नागद्वीपस्तथा साम्यो गन्धर्वस्त्वथ चारुणः ।
अयं तु नवमस्तषां द्वीपः सागारसंवृतः ॥
योजनानां सहस्रं तु द्वीपोयं दक्षिणोत्तरात् ।
पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्थिताः ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शब्द्राश्च भागशः ।
इज्यायुधवणिज्यायैर्वर्तयन्तो व्यवस्थिताः ॥

(विष्णु पुराण 2.3.6-9)

भारतवर्ष के नौ विभागों को सुनें। वे हैं- इन्द्रद्वीप, कशेरुमान्, ताप्रपर्ण, गमस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वारुण और नौवाँ यह भारत - ये समुद्र द्वारा घिरे द्वीप हैं, ये द्वीप उत्तर दक्षिण में एक हजार योजन (प्रत्येक) दीर्घ हैं। इसके पूर्व में किरातगणों का स्थान है। पश्चिम में यवन, मध्य में ब्राह्मण आदि चारों वर्ण अपने नियमानुसार जैसे ब्राह्मण यज्ञादि, क्षत्रिय युद्धादि, वैश्य वाणिज्यादि, शूद्रगण सेवाकार्य करते हुए निवास करते हैं।

भारत की जो सीमाएँ शास्त्रों में वर्णित हैं, उनमें यवन, किरात आदि जनजातियाँ उसी भूभाग में निवास करती हैं। विश्व के अन्य द्वीपों या महाद्वीपों में इन जातियों का उल्लेख ही नहीं मिलता। परंतु पूर्वपक्षी आचार्यों ने एक ही दृष्टि से सम्पूर्ण विश्व के लोगों को “म्लेच्छ” घोषित कर दिया। इसमें उनकी भूल भी नहीं कही जा सकती, क्योंकि वे स्वयं कभी उन देशों में गए नहीं, न वहाँ की जाति-व्यवस्था को प्रत्यक्ष देखा, न ही उन देशों के पंथों द्वारा वर्णित सामाजिक संरचना को समझने का प्रयत्न किया। उन्होंने केवल प्रत्यक्ष दृष्टि और अनुमान को प्रमाण मानकर जब उन देशों के मनुष्यों के आचरण और व्यवहार का निरीक्षण किया, तो निष्कर्ष निकाल लिया कि भारतवर्ष के बाहर कोई जाति-व्यवस्था नहीं है और वहाँ के सभी लोग म्लेच्छ हैं। परंतु शास्त्रों के मत में ऐसा नहीं है — शास्त्रों ने तो सम्पूर्ण द्वीपों और भूखण्डों को जाति-व्यवस्था के अंतर्गत माना है।

अगर माना भी जाये कि वहाँ की जाति व्यवस्था अब वर्णसंकरित हो चुकी है, परन्तु सभी म्लेच्छ कहे जाएँगे, ये सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि क्षत्रिय पुरुष का शूद्र स्त्री से संयोग इसके लिए जरूरी है।

क्या धर्म स्मृति भी मना करती हैं विदेश जाने को?

कलिंग ब्राह्मण- बौधायनधर्मसूत्र (1.1.22) ने समुद्र-संयान (समुद्र-यात्रा) को निन्द्य माना है और उसे महापातकों में सर्वोपरि स्थान दिया है।

उत्तर- पहले बता दें, धर्मशास्त्र का नाम लेकर बहुत सारे गलत श्लोक लोगों ने स्वयं रच कर अपना मनमाना पक्ष रखा है, जैसे

**समुद्रयानगमनं ब्राह्मणस्य न शस्यते
(पराशर स्मृति)**

ये श्लोक पराशर स्मृति में पाया ही नहीं जाता। प्रायः मुख्य अष्टादश स्मृतियों में विदेश यात्रा का कोई भी वर्णन नहीं है।

बौधायन धर्मसूत्र के वचनों में विदेश यात्रा की आंशिक चर्चा भी प्राप्त नहीं होती। हाँ, नाँव में बैठकर किसी द्वीप पर जाना जरूर पाप बताया है। आइये समीक्षा करते हैं।

पहले एक बात समझ लीजिए, एक महापातक कर्म होते हैं और दूसरे पतनीय कर्म होते हैं। और दोनों में अंतर होता है। आपने समुद्र यात्रा को महापातक बताया है जो गलत है।

**पतनीयानि पतनार्णि कर्मार्णि महापातकम्य ईषन्यूनानि ॥
(गोविंद स्वामी टीका, बौधायनधर्मसूत्र)**

पतनीय कर्म वे हैं जो मनुष्य के पतन का कारण बनते हैं, ये महापातक से थोड़ा कम गंभीर पाप माने गए हैं।

महापातक कर्म कौन से होते हैं?

**ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ॥**
मनु स्मृति (11.54)

ब्रह्महत्या, सुरापान, ब्राह्मण का दस माशा व अधिक सोना चुराना, गुरुपत्नीगमन, यह चार महापाप हैं और महापापियों का संसर्ग करना पाँचवाँ महापाप है।

कौटसाक्ष्यं राजगामि पैशुनम् गुरोरनृताभिशंसनं महापातकसमानि ॥
(गौतम स्मृति)

झूठी साक्षी, राजा की चुगली, गुरु की झूठी निन्दा यह भी महापातक के समान है।

वैसे तो महापातक पापों को खत्म करने के जो नियम बताये हैं, वह बड़े कठिन हैं। परन्तु कई सरल भी हैं। इनको बताने का यह अभिप्राय नहीं है कि पहले पाप कर लिया फिर प्रायश्चित्त कर लिया, यहाँ बताने का अभिप्राय ये है कि अगर गलती से कभी कोई महापातक हो जाये तो सरल उपाय क्या है।

**शुक्लाया मूर्त्रं गृहीयाकृष्णाया गोः शकृतथा ॥
ताप्रायाश्च पयो ग्राह्य श्वेतायां दपि चोच्यते ॥**

कपिलाया धृतं ग्राहां महापातकनाशनम् । (यमस्मृति 71-72)

सफेद गाय का मूत्र, और काली गाय का गोबर, लाल गाय का दूध, और सफेद गाय का ढही और कपिला गाय का धी यह पंचगव्य मिला कर पीना चाहिए क्योंकि ये महापातकों का नाश करता है।

**कृष्णोति मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते ।
भस्मीभवन्ति राजेन्द्र ! महापातककोटयः ॥**
(ब्रह्मवैवर्त पुराण)

हे राजा जो-जो भगवान् श्रीकृष्ण का मंगलदायी नाम कृष्ण बोलता है, उसके करोड़ों महापातक भस्मीभूत हो जाते हैं।

श्रीधरी- ननु महतः पापस्य मह-देव प्रायश्चित्तं युक्तं न त्व अल्पं नाम-
ग्रहण-मात्रम्, पाप-तारतम्येन कृच्छादि-तारतम्य-वत्, तत्राहुर् द्वाभ्याम् ।
गुरुणां पापानां गुरुणि प्रायश्चित्तानि लघूनि लघूनां च तारतम्यं ज्ञात्वा
मन्व-आदिभिर् उक्तानि । अतस् तत्र तथैव व्यवस्था । हरि-नामनस् तु
नेयं व्यवस्थोक्ता । विष्णोः स्मरण-मात्रेण मुच्यते सर्व-पातकैः इति
वचनात् । न च सुरा-बिन्दु-पाने महा-पातकत्व-स्मरण-वन् नामनस् तत्
प्रायश्चित्तत्व-स्मरणस्यायम् अति-भारः।

(भागवत 6.2.16)

यदि कोई यह कहे कि बड़े पापों के लिए बड़ा ही प्रायश्चित्त होना चाहिए, छोटा नाम ग्रहण इत्यादि नहीं। जैसा पाप हो उसी तरह का उसका प्रायश्चित्त भी होना चाहिए। इसके उत्तर में भगवद् दूतों ने दो श्लोकों में कहा। मन्वादि महर्षियों ने तो बड़े पापों के लिए बड़े प्रायश्चित्तों और छोटे

पापों के लिए छोटे प्रायश्चित्तों को ही बतलाया है। अतएव वह व्यवस्था उन लोगों के लिए ही यहाँ है। श्रीहरि के नाम के विषय में ऐसी कोई भी व्यवस्था नहीं है। सभी पापों के उपाय के लिए श्रीहरि के नाम के स्मरण की ही व्यवस्था है। स्मृतियाँ कहती भी हैं, “विष्णोः स्मरणमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः” भगवान् विष्णु के स्मरण करने मात्र से ही मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है। ऐसा नहीं कि मदिरा पान कर लेने पर उसके महापातकों में गिने जाने के कारण श्रीभगवान् के नाम स्मरण रूप उसके प्रायश्चित्त के स्मरण का अतिभार है।

अब आइये आपकी समुद्र यात्रा के ऊपर चर्चा करते हैं।

**अथोत्तरतः ऊर्णाविक्रयः शीधुपानं उभय
तोदद्विर्व्यवहारः आयुधीयक समुद्र- सयानमिति ॥
(बोधायन-धर्मसूत्रम् 1.20)**

ऊन का विक्रय, मद्य का पान, दोनों ओर दाँतों वाले पशुओं का क्रय विक्रय, शस्त्र धारण करना और समुद्र यात्रा — ये सब निषिद्ध हैं।

टीका- ऊर्णायास्तद्विकारस्य च कम्बलादेविक्रयः। उभयतो दन्ता
अश्वादयः। व्यवहारः विक्रयादि। आयुधीयक शस्त्रधारणम्।
समुद्रसंगानं नावा द्वीपान्तरगमनम्।

भावार्थ- “ऊन तथा उसके रूपांतरों, जैसे कंबल आदि का विक्रय, दोनों ओर दाँतों वाले पशु, जैसे घोड़े आदि — इनके व्यापार, क्रय या विक्रय को ‘व्यवहार’ कहा गया है। आयुधीयक’ का अर्थ है शस्त्र धारण करना। समुद्रसंगानम् का अर्थ है नाव द्वारा द्वीप से दूसरे द्वीप तक जाना।”

मिथ्यैतदिति गौतमः ॥

(बोधायन-धर्मसूत्रम् 1.23)

गौतम कहते हैं, “यह असत्य (त्रुटिपूर्ण विचार) है।”

विस्तार भय से श्री गोविंद स्वामी जी की टीका के विशेष विषय ही यहाँ लिए जा रहे हैं,

टीका- “...तथा आयुधीयकेऽपि 'परीक्षार्थोऽपि ब्राह्मण आयुधं नादधीत' इति । स्वयमेव पत नीयेषु समुद्रसंयानं वक्ष्यति ॥ 23 ॥

भावार्थ- “...शस्त्र धारण के विषय में भी कहा गया है — “ब्राह्मण को परीक्षा के प्रयोजन से भी शस्त्र नहीं उठाना चाहिए। वह शास्त्रकार स्वयं आगे पतनीय कर्मों में समुद्र यात्रा का उल्लेख करेंगे।”

परन्तु आजकल तो ब्राह्मण सब परशुराम जी के वंशज बन कर शस्त्र प्रदर्शन ही करते फिरते हैं और ऐसे ब्राह्मण बिरले ही होंगे जिन्होंने परीक्षा के लिए भी शस्त्र न उठाया हो, वह सब भी पापी हैं उसी शास्त्र के अनुसार जिसका प्रयोग करके आप समुद्र यात्रा से जाने वाले ब्राह्मणों को पापी कहते हैं। और निषेधित समुद्र यात्रा की चर्चा में कहा गया है कि एक द्वीप से दूसरे द्वीप तक नाँव से यात्रा नहीं करें।

पतनीय कर्म- इनसे भी पतन होता है, परंतु इनका भी प्रायश्चित्त संभव है।

दो धर्मसूत्रों में जो पतनीय कर्मों की सूची है वो अलग है। विशेष यह है कि एक सूची में समुद्र यात्रा का कोई वर्णन नहीं है और दूसरे में हैं।

**अथ पतनीयानि । स्तेयमाभिशस्त्यं पुरुषवधो ब्रह्मोज्ज्ञं गर्भशातनम्मातुः
पितुरिति योनिसम्बन्धे सहापत्ये स्त्रीगमनं सुरापानमसंयोगसंयोगः ।**

(आपस्तम्बधर्मसूत्रम् 7-8)

सुवर्ण की चोरी, ब्राह्मण की हत्या, पुरुष का वध, वेदाध्ययन का त्याग, गर्भ की हत्या, माता की बहन, पिता की बहन, तथा उनकी पुत्रियों (मौसी की पुत्री, मामा की पुत्री, बुआ की पुत्री, चाचा की पुत्री) के साथ मैथुन, सुरापान, उन लोगों के साय संयोग जिनका संयोग निषेध है, ये सभी पतन कराने वाले दुराचरण हैं।

**अथ पतनीयानि । कानि पुनस्तानिसमुद्रसंयानम् ब्रह्मस्वन्यासापहरणं
भूम्यनृतवदनं सर्वापयैर्व्यवहरणं शूद्रसेवनं शूद्राभिगमनं
यश्च शूद्रायामभिजायते तदपत्यं च भवति इति ।**
(बोधायन-धर्मसूत्रम् 2.40)

समुद्र यात्रा, ब्राह्मण की अमानत (न्यास) की चोरी, भूमि के क्रय विक्रय में झूठ बोलना, शूद्र सेवा, शूद्र स्त्री से संबंध, शूद्र स्त्री से उत्पन्न संतान – वह भी पतनीय होती है।

टीका- समुद्रसंयानं नावाऽन्तरा द्वीपान्तरगमनम् ।

समुद्र में नाव द्वारा एक द्वीप से दूसरे द्वीप तक जाना पतनीय कर्म है।

**अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी ।
समुद्रयायी बन्दी च तैलिकः कूटकारकः ॥**
(मनु स्मृति 3.158)

घर जलाने वाला, विष देने वाला, व्यभिचारिणी के पुत्र का अन्न खाने वाला, सोम-विक्रेता, समुद्र-यात्री, भाट (जो मनुष्यों की स्तुति गाकर उनसे

लाभ प्राप्त करता है), तेल का व्यापारी और झूठी गवाही देने वाला — ये सभी पतनीय हैं।

टीका- समुद्र उदधिस्तं यो याति

भावार्थ- जो समुद्र में जाता है।

एक द्वीप से दूसरे द्वीप की समुद्र-यात्रा पापमय कही गई है—इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता, क्योंकि यह शास्त्रवचन है, और जो शास्त्र में लिखा है वही प्रमाण है। परंतु यह भी समझना आवश्यक है कि शास्त्र ने केवल “समुद्रगमन” का उल्लेख किया है, न कि स्थलमार्ग या आकाशमार्ग से विदेश जाने का। शास्त्र शब्दों से बँधा है, हमारी कल्पनाओं से नहीं।

जो टीकाएँ स्वयं शास्त्रों पर स्वीकृत और मान्य हैं, उन्होंने भी कहीं यह नहीं कहा कि सङ्क या आकाश मार्ग से यात्रा करने वाला ब्राह्मण धर्म से पतित हो जाता है। आज के कुछ भ्रमित आचार्य अपनी सीमित दृष्टि से जो व्याख्या कर रहे हैं, वह शास्त्रसम्मत नहीं है।

“समुद्रयात्री” और “समुद्रयात्रा” शब्दों का अर्थ उनके व्याकरणिक रूप से सिद्ध होता है। इन शब्दों का प्रयोग उन व्यक्तियों के लिए किया गया है जिनका समुद्र के पार व्यापार या जीविका हेतु लगातार आना-जाना बना रहता है। और ये यात्रा राजा वेन ने शुरू करवायी थी -

कलौ तु पापबाहुल्यान् वर्जनीयानि मानवैः ।
विधवापुनरुद्धाहो नौयात्रा तु समुद्रतः ॥
आतिश्यकरणार्थं तु मधुपर्कं पशोर्वधः ।
शूद्रान्मोज्यता वाऽपि तीर्थसेवी च दूरतः ॥
सर्ववर्णेषु भिक्षुणा भैक्षाचर्यविधानतः ।

ब्राह्मणादिषु गेहेषु शूद्रस्य पचनक्रिया ॥
 कलौ युगे विशेषेण पतितस्यान् संशयः ।
 कृतादौ तु महीपालो वेनो नाम नृपोत्तमः ॥
 शशास पृथिवीं सर्वा सकुलाद्रिमहार्णवाम् ।
 दुरात्मा स तु कृत्येन ब्राह्मणानन्वशासत ॥
 यूयमद्यप्रभृति वै समुद्र यानमार्गतः ।
 द्वीपाद्वीपान्तरं गत्वा कुरुध्वं सर्वविक्रयम् ॥
 (नारायण स्मृति 7.2-8)

कलियुग में पापों की प्रवृत्ति अत्यधिक हो जाने से अनेक कर्म, जो पूर्व युगों में अनुमत थे, अब त्याज्य घोषित किए गए हैं। इसमें विधवा का पुनर्विवाह, समुद्रयात्रा, मधुपर्क में पशु-वध, शूद्र के हाथ का अन्न खाना, तीर्थों में अत्यधिक भ्रमण, भिक्षुकों का नियम-विरुद्ध भिक्षाटन, तथा ब्राह्मण आदि उच्चवर्णीयों के घरों में शूद्र का भोजन पकाना, ये सब कर्म मनुष्यों के लिए वर्जनीय कहे गए हैं। कलियुग में मनुष्यों के पतन की संभावना अत्यधिक है, इसमें कोई संदेह नहीं। कृतयुग के प्रारम्भ में “वेन” नामक एक राजा हुआ था, जिसने समस्त पृथ्वी, पर्वतों और महासागरों सहित शासन किया। पर वह दुरात्मा था, उसने धर्म-विरुद्ध कार्य किए और ब्राह्मणों पर अनुचित शासन करने लगा। उसी राजा वेन ने एक बार ब्राह्मणों से कहा, “अब से तुम सब समुद्र के मार्ग से यात्रा करो, एक द्वीप से दूसरे द्वीप समुद्रयान में जाओ और वहाँ व्यापार करो।”

विशेष- यह बात निर्विवाद है कि शास्त्र ने “विदेश यात्रा” का निषेध कभी नहीं किया। उसने केवल “समुद्र से नाँव द्वारा यात्रा” का उल्लेख किया है और वह भी उस समय की परिस्थितियों के कारण। पूर्वकाल में नाव ही एकमात्र साधन थी दूसरे देशों या द्वीपों तक पहुँचने का। महीनों तक समुद्र में रहना पड़ता था, और भटक जाने की स्थिति में न शुद्ध आहार उपलब्ध

होता था, न संग की मर्यादा सम्भव रहती थी। यही कारण था कि उस परिस्थिति में समुद्र-यात्रा पतनीय मानी गई।

ध्यान दीजिए, पूर्वकाल में पदयात्रा, बैलगाड़ी यात्रा, विमान यात्रा आदि का निषेध कहीं नहीं किया गया, क्योंकि पदयात्रा या बैलगाड़ी यात्रा में आहार-विहार में समझौते की सम्भावना बहुत कम रहती है। इसका अर्थ स्पष्ट है, निषेध एक विशेष प्रकार की यात्रा के साधन से जुड़ा था, दूसरे देश से नहीं।

अब यदि शास्त्र का मत “विदेश-गमन” के विरुद्ध होता, तो वह निःसंकोच कहता, “विदेश जाना निषेध है” परंतु उसने ऐसा नहीं कहा। उसने केवल “समुद्र-संयानम्” कहा, यानी समुद्र मार्ग से नाव द्वारा गमन। यह शब्द स्वयं अपने अर्थ को स्पष्ट करता है। उसे “हवाई यात्रा” या “विदेश यात्रा” से जोड़ना भाषिक विकृति है, न कि शास्त्रीय विवेचन।

वर्तमान युग में यात्रा के अनेक साधन हैं, पैदल, रेल, मोटर, या विमान। हर साधन की प्रकृति और मर्यादा भिन्न है। मान लीजिए, कोई व्यक्ति दिल्ली से कन्याकुमारी तक पैदल जाता है तो उसका सैकड़ों लोगों से संपर्क होगा, अनेकों ठिकानों पर रुकना, भोजन में समायोजन करना पड़ेगा। वहीं वही व्यक्ति यदि विमान से जाता है, तो कुछ घंटों में पहुँच जाता है, बिना किसी आहार या संग के विघ्न के। क्या इन दोनों को समान कहा जा सकता है? कभी नहीं।

अगर शास्त्र कहे, की पैदल कन्याकुमारी जाना मना है। तो क्या यह माना जाएगा की कन्याकुमारी जाना मना है या ये माना जाएगा की पैदल कन्याकुमारी जाना मना है? इसलिए “समुद्र-संयानम् = विदेश यात्रा” कहना न केवल अज्ञान है, बल्कि शास्त्र के प्रति घोर अन्याय है। शास्त्र

कभी आधी बात नहीं कहता; उसका प्रत्येक वचन सीधा होता है। जहाँ शास्त्र किसी विशेष परिस्थिति का निषेध करता है, वहाँ उस निषेध को मनमाने अर्थों से फैलाना, शास्त्र के मर्म को विकृत करना है।

और यह समझ लेना चाहिए — धर्म कल्पना से नहीं बनता, शास्त्र से बनता है। जो लोग शब्दों में अपने विचार टूँसकर उसे “शास्त्रीय” घोषित करते हैं, वे धर्म की रक्षा नहीं कर रहे, वे उसे खोखला बना रहे हैं।

**समाः स विशीत पूर्णाः पर्यटन्वै वसुंधराम् ।
आचकर्ष स वै सेनां सवाजिरथकुञ्जराम् ॥
प्रगृहीतायुधैविप्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ।
स तदा तैः परिवृतो म्लेच्छान्हन्ति सहस्रशः ॥**
(वायु पुराण 1.58.77-78)

भगवान कल्कि समस्त पृथ्वीमण्डल (पर्यटन्वै वसुंधराम) पर सैकड़ों सहस्र शस्त्रास्त्रधारी ब्राह्मणों (विप्रैः) को साथ लेकर एक विशाल वाहिनी की सहायता से पूरे बीस वर्ष तक प्रमण कर सहस्रों म्लेच्छों का संहार करते हैं।

बड़ी अद्भुत बात है, कि भगवान विदेशों में जायेंगे पूरी विप्रों की सेना लेकर, अब अगर कलियुग में विदेश यात्रा निषेध है तो क्या भगवान के साथ जाने वाले विप्र पतित कहलायेंगे? क्या उनको विप्र कहा भी जा सकता है?

अब आपने जिस स्मृति के ऊपर चर्चा छेड़ी हुई है, उसी स्मृति के अंदर म्लेच्छ देशों का वर्णन भी है, और वहाँ कैसे उन देशों में जाने से पाप लगता है उसकी चर्चा भी है। उसके ऊपर पूर्वपक्ष के समस्त विद्वान मौन हैं और हमारा अनुभव है कि अधिकांश ब्राह्मण तो उन पापों को हमेशा करते हैं ?

आवन्त्योऽङ्गमगधाः सराष्टा दक्षिणापथाः ।

उपावृत्सिन्धुसौवीरा एते सङ्कीर्णयो नयः ॥ (बोधायन-धर्मसूत्रम् 1.29)

अवन्ती, अंग, मगध, सौराष्ट्र, द्राविड (दक्षिण), उपावृत, सिंधु और सौवीर, इन देशों के निवासी मिश्र जाति (संकर वंश) के माने गए हैं।

यह सूत्र और इसके बाद के दो सूत्र यह बताने के लिए हैं कि जिन देशों (प्रदेशों) के नाम यहाँ दिए गए हैं, उनके प्रचलित आचार या रीति-रिवाज शास्त्रीय रूप से मान्य नहीं हैं और उन्हें अनुसरण नहीं करना चाहिए।

अवन्ती- वर्तमान पश्चिमी मालवा क्षेत्र।

अंग- वर्तमान पश्चिमी बंगाल का क्षेत्र।

मगध- आज का बिहार।

सौराष्ट्र- दक्षिण काठियावाड (गुजरात) क्षेत्र।

सौवीर- प्रायः सिंध प्रदेश के दक्षिण-पश्चिम भाग में, वर्तमान मुल्लान के आसपास निवास करने वाला समुदाय।

उपावृत- संभवतः वही लोग हैं जिन्हें महाभारत (भीष्मपर्व, अध्याय 49) में उपावृत कहा गया है।

इन सूत्रों का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि इन प्रदेशों के लोगों की प्रथाएँ मिश्रित (संकर) हैं, इसलिए उनके आचारों को धर्मशास्त्र में प्रमाण या आदर्श नहीं माना जा सकता।

टीका- अवन्त्यादिषु कल्याणाचारो नास्ति।

किञ्च्च-केचिद्देशा: प्रवेशार्हा न भवन्ति। तत्प्रवेशे प्रायश्चित्तविधानात्।
तत्र दूरोत्सारितमाचारग्रहणमित्याह। 29

भावार्थ- अवन्ती आदि देशों में शुभ आचार नहीं पाए जाते। (सूत्र 29) इसके अतिरिक्त — कुछ देश ऐसे हैं जहाँ प्रवेश करना ही योग्य नहीं है, क्योंकि वहाँ प्रवेश करने पर प्रायश्चित्त का विधान किया गया है। इससे यह ज्ञात होता है कि उन देशों के आचार इतने दूषित हैं कि उन्हें दूर से ही त्याग देना चाहिए — यही इस कथन का अभिप्राय है।

**आरटान्कारस्करान्पुण्डान्सौ वी रान्यङ्गकलिङ्गन्परानूनानितिच
गत्वा पुनः स्तोमेन यजेत्, सवेपरष्ठ्या वा ॥
(बोधायन-धर्मसूत्रम् 1.30)**

जो व्यक्ति आरटृ, कारस्कर, पुंड्र, सौवीर, वंग, कलिंग या प्राणुन देशों की यात्रा कर आता है, उसे लौटने पर “पुनस्तोम” या “सर्वपृष्ठा इष्टि” नामक यज्ञ करना चाहिए।

आरटृ- ये स्थान पंजाब प्रदेश में निवास करते थे। महाभारत (द्रोण पर्व,) में इनके प्रति तीव्र निंदा की गई है।

कारस्कर- इन्हें भी महाभारत के उसी अध्याय में “नीच जाति” (अपकृष्ट कुल) के रूप में उल्लेख किया गया है; ऐसा प्रतीत होता है कि ये दक्षिण भारत के किसी भाग से संबंधित थे।

कलिंग- ये भारत के पूर्वी तटवर्ती प्रदेश के निवासी थे, जो वर्तमान ओडिशा और कृष्णा नदी के मुहाने के बीच स्थित क्षेत्र है।

पुंड्र- इनका उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण (सप्तम अध्याय, अठारहवां खंड) में एक “अपकृष्ट जाति” के रूप में हुआ है।

वंग- ये बंगाल क्षेत्र के निवासी माने गए हैं।

जो व्यक्ति इन म्लेच्छ या अपकृष्ट प्रदेशों में गया हो जैसे आरटृ, कारस्कर, पुंड्र, सौवीर, वंग या कलिंग – उसे शुद्धि के लिए पुनर्स्तोम या सर्वपृष्ठा इष्टि यज्ञ करना चाहिए।

टीका- पुनर्स्तोमो नाम एकाहः। इष्टप्रथमसोमस्यैव प्रायश्चित्तमेकाहो
द्रष्टव्यम्। यदि पयामेव विशेष कुर्वीतैष ह वै पद्मयां पापं करोत्यारवान्
कारस्करान् पुण्ड्रान् सौवीरान् वा गच्छति इति।
सर्वपृष्ठेष्टिस्त्वाहितानिमात्रस्य। सा च य इन्द्रियकामो वीर्यकामस्स्यात्
इत्यत्र विहिता। अनाहितामेस्तु वक्ष्यति-प्रतिषिद्धदेशगमने इति।

“पुनर्स्तोम” नामक यज्ञ एक दिन का है। यह “इष्टप्रथम सोमयज्ञ” का ही प्रायश्चित्त रूप है। श्रुति में कहा गया है, “यदि कोई व्यक्ति आरटृ, कारस्कर, पुंड्र या सौवीर देशों में जाता है, तो वह पाप करता है।” इस प्रकार के पाप के प्रायश्चित्त के लिए पुनर्स्तोम यज्ञ का विधान है। “सर्वपृष्ठेष्टि” यज्ञ केवल अग्नि स्थापन करने वाले व्यक्तियों के लिए है। यह उस व्यक्ति के लिए विधान किया गया है जो इन्द्रिय या वीर्य की इच्छा रखता है। किन्तु जिनका अग्नि-स्थापन नहीं हुआ है, उनके लिए आगे कहा जाएगा, “प्रतिषिद्ध देश में गमन करने पर अन्य प्रायश्चित्त करना चाहिए।”

**पुनरप्याहितामेरेव देशान्तरगमने प्रायश्चित्तमाह
अथाप्युदाहरन्ति- पद्यां स कुरुते पापं यः कलिङ्गान् प्रपद्यते ।
ऋषयो निष्कृति तस्य प्राहु वैश्वानरं हविः।
(बोधायन-धर्मसूत्रम् 1.31)**

जो व्यक्ति कलिंग देश की यात्रा करता है, वह अपने पैरों के द्वारा पाप करता है। ऐसे व्यक्ति के लिए वैश्वानरी इष्टि नामक यज्ञ को प्रायश्चित्त बताया गया है।

टीका- वैश्वानरीयेष्टिः। एषा च कलिङ्गगमने सर्वपृष्ठया सह विकल्प्यते। अथ वाआरटादिषु न गमनादेव प्रायश्चित्तं, किं तर्हि सम्माषणसहासनादिभिरपि। कलिङ्गे पुनर्गमनमात्रमिति विशेषः।

भावार्थ- यहाँ बताई गई वैश्वानरी इष्टि ही वह प्रायश्चित्त है। और कलिंग देश की यात्रा के पाप के लिए यह इष्टि कभी-कभी सर्वपृष्ठ इष्टि के साथ विकल्प रूप में भी ग्रहण की जाती है। किन्तु आरट आदि देशों के विषय में बात भिन्न है — वहाँ केवल गमन मात्र से पाप नहीं होता; बल्कि यदि कोई व्यक्ति उन देशों के लोगों से संभाषण करे, साथ बैठे, या उनके साथ लेन-देन आदि व्यवहार करे, तो ही प्रायश्चित्त आवश्यक होता है। परंतु कलिंग देश के मामले में विशेष नियम यह है कि वहाँ केवल गमन मात्र ही पाप माना गया है।

**बहूनामपि दोषाणां कृतानां दोषनिण्ये पवित्रे
प्रशसन्ति सा हि पावनयुत्तमम् इति**
(बोधायन-धर्मसूत्रम् 1.35)

यदि किसी व्यक्ति से अनेक अपराध हो गए हों, तो वे उस पाप के नाश के लिए पवित्रेष्टि का विधान करते हैं, क्योंकि यह यज्ञ अत्यन्त उत्तम शुद्धिकरण का साधन है।

विशेष- अब जरा यह बात गंभीरता से समझनी चाहिए—जिन धर्मशास्त्रों की दुहाई देकर कुछ लोग विदेश यात्रा को अधर्म ठहराते हैं, उन्हीं शास्त्रों में भारतवर्ष के भीतर स्थित अनेक स्थानों को “पापमूर्मि” कहा गया है। यहाँ तक कि उन ग्रंथों में यह तक लिखा है कि ऐसे देशों के लोगों से वार्तालाप करने के बाद द्विज को शुद्धि करनी चाहिए।

पर क्या हमने कभी किसी द्विज को ऐसा करते देखा? नहीं। आज असंख्य ब्राह्मण, आचार्य और धर्मगुरु स्वयं उन स्थानों में निवास करते हैं, प्रवचन देते हैं, यात्राएँ करते हैं—फिर शास्त्र के उस विधान के अनुसार तो वे सब भी “पापी” ठहरेंगे।

अतः यदि कोई पूर्वपक्षी वास्तव में शास्त्र का पूरा पालन करता है, तभी उसे बोलने का अधिकार है। परन्तु दुर्भाग्य यह है कि वे अपनी वैमनस्यता और अज्ञान के कारण शास्त्र के वचनों को अधूरा उद्धृत करते हैं, संदर्भ से काटकर प्रस्तुत करते हैं, और इस प्रकार धर्म नहीं, अधर्म का ही प्रचार करते हैं। अतः आंशिक उद्धरणों से निर्णय देना केवल विद्वेष का प्रदर्शन है, धर्म का नहीं।

ऐसे अनेकों वर्जित कर्म हैं जिन्हें शास्त्र ने निषिद्ध कहा है, पर आज के काल में वे स्वयं तथाकथित धर्मगुरुओं और ब्राह्मणों के आचरण का अंग बन चुके हैं। उसके एक दो उदाहरण सिर्फ आपको यहाँ दिखाने के लिए दिए जा रहे हैं,

**सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ।
त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥**
(मनुस्मृति 10.92)

मांस, लाख और नमक बेचने वाला ब्राह्मण तत्काल पतित हो जाता है; और दूध बेचने वाला ब्राह्मण तीन दिनों में शूद्र बन जाता है।

**लाक्षालवणमांसानि पतनीयानि विक्रये ।
पायो दधि च मद्यं च हीनवर्णकराणि तु ॥**
(याज्ञवल्क्य स्मृति 3.40)

लाख, नमक और मांस बेचने पर पत्तित हो जाता है और दूध, दही तथा सुरा बेचने पर वह हीनवर्ण का हो जाता है (अर्थात् शूद्र के समान बन जाता है)।

अब प्रश्न ये होता है कि वर्तमान में कई धर्मगुरु अपने शिष्यों के साथ, एवं ब्राह्मण अपनी गौशालाओं के दूध, दही आदि का विक्रय कर रहे हैं। शास्त्र अनुसार चलें तो वो सब शूद्र समान हैं। और उन शूद्रवत् धर्मगुरुओं को ब्राह्मण के समान ही बाकी के लोग पूजते हैं।

क्या मनुस्मृति ने म्लेच्छ देश जाने की आज्ञा दी है?

कलिंग ब्राह्मण- आप मनु स्मृति के इस श्लोक के बारे में क्या कहेंगे?

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः ।
स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः ॥
(मनुस्मृति 2.23)

जिस आर्यावर्त में काला हिरण स्वभावतः बेखटके विचरता है, उस आर्यावर्त को यज्ञ करने योग्य या पवित्र देश समझाना चाहिए। इस से जो भिन्न देश हैं वे म्लेच्छ देश कहलाते हैं।

उत्तर- आइये आपके द्वारा दिए हुए श्लोक की समीक्षा करते हैं।

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः ।
स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः ॥
(मनुस्मृति 2.23)

जिस देश में कृष्णसार नामक मृग स्वभावतः विचरण करता है, वही यज्ञों के लिये उपयोगी देश है, उससे भिन्न म्लेच्छों का देश है।

मेधातिथि टीका- यच्चोक्तं म्लेच्छदेशस्त्वतः पर इत्येषोऽपि प्रायिकोऽनुवाद एव। प्रायेण ह्येषु देशेषु म्लेच्छा भवन्ति। न त्वनेन देशसंबन्धेन म्लेच्छा वक्ष्यन्ते। स्वतस्तेषा प्रसिद्धब्राह्मणादि जातिवत्। अथार्थद्वारेणायं शब्दः प्रवृत्तो म्लेच्छानां देश इति तत्र यदि कथंचिब्रह्मावर्तादिदेशमपि म्लेच्छा आक्रमेयुः तत्रैवावस्थानं कुर्युभवेदेवासौ

**म्लेच्छदेशः। तथा यदि कश्चित्क्षत्रियादिजातीयो राजा साध्याचरणो
म्लेच्छान्यराजयेत् चातुर्वर्ण्य वासयेत् म्लेच्छां श्चार्यावर्त इव
चाण्डालान्यवस्था पयेत्सोऽपि स्याद्यज्ञिय। यतो न भूमिः स्वतो दुष्टा
संसर्गाद्वि सादुष्यत्यमेध्योपहतेव।**

“‘म्लेच्छदेशस्त्वतः परः’ यह जो कहा गया है, वह कोई कठोर नियम नहीं बल्कि एक सामान्य कथन है। मतलब यह नहीं कि उस देश का हर व्यक्ति म्लेच्छ है, बल्कि यह कि वहाँ प्रायः म्लेच्छ लोग रहते हैं। देश से म्लेच्छता नहीं आती, जैसे ब्राह्मण या क्षत्रिय अपनी जाति से जाने जाते हैं, (उनके स्थानों को ब्राह्मण देश और क्षत्रिय देश नहीं कहा जाता) वैसे ही म्लेच्छ भी अपने कर्म और आचरण से पहचाने जाते हैं। अगर कभी म्लेच्छ लोग आर्यावर्त जैसे पवित्र प्रदेशों पर कब्जा कर लें और वहाँ बस जाएँ, तो जब तक वे वहाँ रहते हैं, वह देश म्लेच्छदेश कहलाएगा। पर यदि कोई धर्मशील राजा उन्हें हराकर वहाँ फिर से चारों वर्णों को बसाए और म्लेच्छों को उचित मर्यादा में रखे, तो वही भूमि फिर से यज्ञ के योग्य मानी जाएगी। भूमि अपने आप कभी अपवित्र नहीं होती — वह तो केवल जिस संगति में रहती है, उसी के अनुसार शुद्ध या अशुद्ध कही जाती है।”

विशेष-

11

**कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः।
स ज्ञेयो याज्ञिको देशो म्लेच्छदेशस्ततः परः ॥**

इस श्लोक को ब्राह्मण की विदेश-यात्रा के निषेध के रूप में लेना शास्त्रीय दृष्टि से पूर्णतया अनुचित है। यदि यह निषेध होता, तो श्लोक में “न

गच्छेत्,” “वर्जयेत्,” या “अगम्यः” जैसे निषेधवाचक शब्द प्रयुक्त होते। किंतु यहाँ “ज्ञेयः” शब्द है—जिसका अर्थ है “ऐसा जानना चाहिए,” न कि “ऐसा करना ही चाहिए।” यह वाक्य आज्ञा नहीं, बल्कि वर्णन है। “म्लेच्छदेशस्ततः परः” का भी यही अभिप्राय है—इन सीमाओं के परे ऐसे प्रदेश हैं जहाँ वैदिक संस्कृति और याज्ञिक परंपराएँ सामान्यतः दुर्बल या लुप्त हैं; पर इसका अर्थ यह नहीं कि वहाँ जाने और रहने वाला व्यक्ति अपने धर्म से च्युत हो कर म्लेच्छ हो जाता है।

2। अगर कृष्णसार मृग का किसी स्थान पर पाया जाना यह सिद्ध करता कि वह भूमि यज्ञभूमि बन गई। तो आज यह मृग अन्य देशों में भी मिलते हैं, जो पहले भारतवर्ष का ही हिस्सा थे, पर क्या इससे यह नहीं कहा जा सकता कि वे सभी देश यज्ञ के योग्य हैं? भारतवर्ष की सीमाएँ कालान्तर में अनेक बार परिवर्तित होती रही हैं। आज जिन देशों पर म्लेच्छवत् लोगों का शासन स्थापित है या जो भारत से पृथक हो चुके हैं—यदि उन भूमियों में कृष्णसार मृग भी पाए जाते हों, तो क्या केवल इसी आधार पर उन्हें यज्ञभूमि कहा जा सकता है या अब वे म्लेच्छ देश बन गए हैं और वहाँ यज्ञ नहीं हो सकता? यदि किसी म्लेच्छ राजा ने भारत के अंदर किसी अंश पर अधिकार कर लिया हो, तो क्या मात्र उसके आधिपत्य से वह भूमि म्लेच्छदेश कही जाएगी? शास्त्रीय दृष्टि से देखा जाए तो स्वयं भारतवर्ष के भीतर भी अनेक प्रदेश ऐसे वर्णित हैं, जिन्हें म्लेच्छ भूमि अथवा पापदेश भी कहा गया है और जहाँ जाने का भी निषेध करा गया है, न कि विश्व के देशों को।

3। “स ज्ञेयो याज्ञिको देशो” ‘ज्ञेयः’ शब्द में प्रयुक्त ‘जानना’ धातु के साथ ही आदेशात्मक प्रत्यय जुड़ा है, न कि ‘यज्ञ करना’ धातु के साथ। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि जिन भूमियों का उल्लेख हुआ है, वे यज्ञ के लिए उपयुक्त मानी गई हैं — अर्थात् उनकी प्रकृति, पदार्थ, और परिस्थिति यज्ञ

के अनुकूल हैं। यह उपयुक्तता मात्र योग्यता का संकेत है, न कि वास्तविक यज्ञ करने का आदेश।

आदेश तो यह दिया गया है शास्त्रों में की,

**त्रिपुण्ड्रं यस्य विप्रस्य ऊर्ध्वपुण्ड्रं न दृश्यते ।
तं स्पृष्ट्वाप्य अथवा दृष्ट्वा सचेलं स्नानम् आचरेत् ॥**
(हरिभक्तिविलास 4.188)

जिस ब्राह्मण के ललाट पर ऊर्ध्वपुण्ड्र न होकर त्रिपुण्ड्र है उसका दर्शन या स्पर्श करके एक हजार बार स्नान करना चाहिए। आपने प्रायः कई विप्रों के त्रिपुण्ड्र के साथ दर्शन किए होंगे, तो क्या आपने कभी हजार बार स्नान किया?

आइये अब मनुस्मृति के आगे के श्लोक की आलोचना करते हैं,

**एतान्द्विजातयो देशान्संश्रयेरन्प्रयत्नतः ।
शूद्रस्तु यस्मिन्कस्मिन्चा निवसेद्वृत्तिकर्शितः ॥**
(मनु स्मृति 2.24)

द्विजातीय लोग उन उपर्युक्त देशों में प्रयत्न करके आश्रय ग्रहण करें। शूद्र भी प्राथमिकता के साथ इन्हीं देशों में निवास करें। किंतु शूद्र जीविका न मिलने पर निर्वाह के लिये किसी भी देश में निवास कर सकता है।

विशेष-

1। “एतान्द्विजातयो देशान्संश्रयेरन्प्रयत्नतः” यह कहा गया है कि—“द्विजाति, यद्यपि अन्यत्र जन्म प्राप्त हुए हों, तथापि उन्हें आर्यावर्त आदि

देशों में निवास करने का प्रयत्न करना चाहिए।” अर्थात् वे अपने जन्मस्थान को त्यागकर इन पवित्र देशों में जाकर बसने का पूर्ण प्रयास करें। और श्री मनु तो उनको सीधे ही उन म्लेच्छ देश में रहने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों को द्विज बोल रहे हैं, तो उनका द्विजत्व तो उन देशों में जन्म लेने के बाद भी नहीं छूटा। और विशेष बात, द्विज का अर्थ है जिसका यज्ञोपवीत संस्कार हो चुका हो, सावित्री दीक्षा की प्राप्ति भी हो चुकी हो और यज्ञोपवीत संस्कार यज्ञ के द्वारा सम्पन्न होता है। तो मनु महाराज तो उस द्विज के म्लेच्छ देश में जन्म, यज्ञोपवीत संस्कार यज्ञ एवं सावित्री दीक्षा को पूर्णतः स्वीकार कर रहे हैं। और कहीं भी कह ही नहीं रहे कि म्लेच्छ देश में जन्म, यज्ञोपवीत संस्कार, निवास के कारण पतित हो गया है।

कोई यह आपत्ति कर सकता है कि “उनका जन्म म्लेच्छ देश में हुआ है तो वो तो म्लेच्छ होंगे या ऐसे म्लेच्छ देशों में केवल प्रवेश करने से भी मनुष्य म्लेच्छ बनता है, पर यह तर्क भी ग्राह्य नहीं, क्योंकि यहाँ भाव है “अपने जन्मस्थान (विदेशी धरती) को छोड़कर आर्यावर्त आदि देशों में बसने का प्रयत्न करना।”

इस श्लोक में आगे कहा गया है कि यदि किसी द्विज को निवास करना हो, तो वह उन देशों का परिचय प्राप्त कर वहाँ “प्रयत्नः” प्रयत्न करके निवास करे। प्रयत्न का अर्थ होता है “प्रकृष्टयतः” “पूरी चेष्टा करने वाला” ये नहीं कहा है कि निवास करना है, ये कहा गया है कि प्रयत्न जरूर करना है निवास करने का, जहाँ कृष्णसार मृग स्वभावतः विचरते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि शास्त्र उस द्विज की पहले से ही किसी अन्य स्थान — सम्भवतः विदेश में निवास करने की स्थिति को स्वीकार कर रहा है। यदि विदेश में रहना ही द्विजत्व के नाश का कारण होता, तो शास्त्र उन मनुष्यों को “द्विज” कहकर संबोधित ही क्यों करता?

इसका एक सीधा सा उदाहरण जो सृति में लिखित है, जिसमें कहा गया है कि कोई अग्निहोत्री अगर विदेश में मर जाए तो क्या करना चाहिए।

**विदेशमरणेऽस्थीनि ह्याहृत्याभ्यज्य सर्पिषा ।
दाहयेदूर्णयाच्छाद्य पात्रन्यासादि पूर्ववत् ॥**
(गात्यायन सृति 23.2)

यदि अग्निहोत्री विदेश में मर जाय तो उसकी अस्थियों को लाकर धी छिड़क कर ढककर दाह कर और उस पर होम के पात्रों को पूर्व के समान रख दें।

इससे स्पष्ट होता है कि वह व्यक्ति चाहे म्लेच्छ देश में रह रहा हो, अग्निहोत्र भी कर रहा है तो उस देश में रहने के कारण भी उसका द्विजत्व नष्ट नहीं हुआ, वह अब भी द्विज कहलाने योग्य है। और सबसे महत्वपूर्ण बात — इस पूरे प्रसंग में कहीं भी द्विज के विदेश प्रवास का निषेध कहीं नहीं किया गया है, न ये कहा गया है कि वो पतित हो जाएगा।

2। “शूद्रस्तु यसिन्कस्मिन्वा निवसेद्वृत्तिकर्शितः” “शूद्र जीविका न मिलने पर निर्वाह के लिये किसी भी देश में निवास कर सकता है।” चूँकि शूद्र का स्वर्धर्म द्विजों की सेवा करना है, इसलिए उसे वहीं रहना चाहिए जहाँ द्विजजन रहते हैं। पर यदि उसे वहाँ जीवनयापन के साधन न मिलें, तो वह दूसरे देश में जाकर भी वहाँ पर रह रहे द्विजों की सेवा करके आजीविका कमा सकता है — यह श्लोक के उत्तरार्थ का अनुमोदन है। क्योंकि शूद्र को आजीविका कमाने के लिए विदेश जाने की आज्ञा दी है, वहाँ किसी और जाति के कर्म करने की आज्ञा नहीं दी है। शूद्र की जाति म्लेच्छ जाति से उच्च है। अगर यह कहा जाये कि शूद्र, किसी और जाति या म्लेच्छवत् आचरण करके जीविका कमाये तो वह अपनी वर्णव्यवस्था से च्युत हो

जाएगा। गौर करने की बात भी है, आपत्ति में ही अपने स्वधर्म से अलग कार्य करा जा सकता है। परन्तु शूद्र को जब दूसरे देशों में जाने का अनुमोदन करा है तो उसकी आजीविका के कारण न कि आपत्ति के कारण।

3। शास्त्र के अनुसार, जब किसी क्षत्रिय पुरुष का शूद्रा स्त्री से संयोग होता है, तब उससे उत्पन्न संतान म्लेच्छ कहलाती है। परन्तु पूर्वपक्षी तर्क के अनुसार यदि कोई द्विज—जिसमें क्षत्रिय भी सम्मिलित हैं—केवल विदेश में जाने मात्र से ही पतित हो जाता है, तो यह प्रश्न उठता है कि उस पतित क्षत्रिय या ब्राह्मण का संयोग यदि अपनी पत्नी के साथ उसी विदेश में हो, तो उससे उत्पन्न संतान क्या म्लेच्छ कहलाएगी या ब्राह्मण-पुत्र मानी जाएगी? क्योंकि शास्त्र स्पष्ट कहता है — जाति जन्मना निर्धारित होती है, न कि केवल स्थान या निवास के आधार पर। अतः किसी द्विज का किसी विदेश में चले जाना उसके द्विजत्व का नाश नहीं करता; अन्यथा उस सिद्धान्त के अनुसार, अंग, बंग, कलिंग कश्मीर आदि म्लेच्छ स्थानों पर द्विज की संतान भी ब्राह्मण या क्षत्रिय न रहकर म्लेच्छ कहलानी चाहिए, जो शास्त्रीय दृष्टि से असंगत है।

शास्त्र जब विदेश में रह रहे द्विजों को द्विज मानता है तो उन देशों में रहने वाले सभी लोग म्लेच्छ हैं यह कहना बिलकुल गलत है। “म्लेच्छ” किसे कहा जाता है, यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है—और यह भी प्रमाणित है कि भारतवर्ष के भीतर भी म्लेच्छ समुदाय और देश पाए जाते हैं।

शास्त्रों ने भारतवर्ष के भीतर ही कई ऐसे म्लेच्छ प्रदेशों का उल्लेख किया है, जिनका उल्लेख हम पहले भी कर चुके हैं, और आगे आने वाले २लोकों के माध्यम से फिर करेंगे।

**अकृष्णसारो देशानामब्रह्मण्योऽशुचिर्भवेत् ।
कृष्णसारोऽप्यसौवीरकीकटासंस्कृतेरिणम् ॥**
(भागवत 11.21.8)

देशों में वह देश अपवित्र है जहाँ कृष्ण सार मृग नहीं पाये जाते हों, और जिस देश के निवासी ब्राह्मण भक्त न हों, उन प्रदेशों का छोड़कर जहाँ सन्त पुरुष न रहते हों वह कीकट देश अपवित्र हैं। संस्कार रहित और उषर स्थान भी अपवित्र हैं।

श्रीधरी- तद् उक्तम्, स वै पुण्यतमो देशः सत्-पात्रं यत्र लभ्यते इति ।
तद्-वर्जितो यः कीकटोऽङ्ग-बङ्ग-कलिङ्गादिः ।
असंस्कृतः संमार्जनादि-शून्यो म्लेच्छ-बहुलो वा । ईरिणं ऊषरम् ।
एकवद् भावः, तद् अशुचि । तद्-अन्यः शुचिर् इत्य् अर्थाद् उक्तं भवति ।

अर्थात् जहाँ पर सत्यात्र पुरुष (भगवान के भक्त, प्रेमी) रहते हैं वह देश पवित्र देश है। उससे भिन्न कीकट, अंग, बंग और कलिंग देश अपवित्र है, सम्मार्जनादि रहित अथवा म्लेच्छ बहुल स्थान, ऊषर स्थान भी अपवित्र होता है। इन सबों से भिन्न स्थान पवित्र हैं।

कीकट देश- मगध देश का प्राचीन वैदिक नाम जो बिहार प्रान्त में गया (बिहार) का परिवर्ती प्रदेश था। पुराणों के अनुसार बुद्धावतार कीकट देश में ही हुआ था। श्रीधरी कहती है, (भागवत 11.13।124) “कीकटेषु मध्ये गयाप्रदेशे” कीकट देश के मध्य में गया प्रदेश है।

अंग देश- इस देश का विस्तार वर्तमान बिहार में भागलपुर, मुंगेर, बांका, और झारखण्ड के कुछ हिस्सों में फैला था।

बंग देश- प्राचीन काल में बंग सामान्य रूप से पूरे बंगाल का नाम था।

कलिंग देश- कलिंग प्राचीन भारत का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र था, जो मुख्य रूप से वर्तमान ओडिशा राज्य और आंध्र प्रदेश के कुछ हिस्सों में फैला था।

इन सब स्थानों को पाप स्थान बताया गया है। क्यों बताया है?

**अङ्गवङ्गकलिङ्गाद्याः सुह्यपुण्ड्रौङ्गसंज्ञिताः ।
जज्ञिरे दीर्घतमसो बलेः क्षेत्रे महीक्षितः ॥**
(भागवत 9.23.5)

बली की पत्नी के गर्भ से दीर्घतमा मुनि ने छह पुत्रों को उत्पन्न किया, अंग, वङ्ग, कलिंग, सुह्य, पुण्ड और आन्ध्र ॥5॥

**चक्रुः स्वनाम्ना विषयान् षडिमान् प्राच्यकांश्च ते ।
(भागवत 9.23.6)**

उन छहों ने (भारत की) पूर्वदिशा में अपने नाम से छह देशों को बसाया।

**शिष्टैस्तु वर्जिता ये वै ब्राह्मणैत्येदपारगैः ।
गच्छतां रागसम्मोहात्तेषां पापं न गच्छति ॥**
(ब्रह्माण्ड पुराण 2.14.82)

उन स्थानों में राग (आसक्ति) और सम्मोहन के कारण वहाँ जाने वालों का पाप दूर नहीं होता है अर्थात् पाप और अधिक बढ़ जाता है तथा उन अपुण्य अर्थात् पाप प्रदेशों में जाकर समस्त पाप का भागी होना पड़ता है।

अब आप ही बताइए, यहाँ भी पापी देश हैं और यहाँ जाना भी ब्राह्मणों के लिए निषेध है, और उन देशों में जाकर पाप का भागी बनना पड़ता है। पर आपने कभी भी वहाँ रहने वाले ब्राह्मणों के बारे में कुछ नहीं कहा। और न ही आप ने किन्हीं भी ब्राह्मणों को जाने से रोका। और तो और आप स्वयं भी ऐसे ही स्थान पर रहते हैं।

क्या भक्त अपवित्र देशों को पवित्र कर सकता है?

कलिंग ब्राह्मण- आपके द्वारा इतने जटिल विषय को जितनी स्पष्टता से समझाया गया है, उसके लिए दण्डवत प्रणाम। आखिरी प्रश्न, क्या भक्त अपवित्र देशों को पवित्र कर सकता है?

उत्तर- बिलकुल कर सकता है, जो हमारे आचार्यगण विदेश जाते हैं तो वो तो भगवान के प्रेमी हैं, वो जहाँ जाते हैं उनकी उपस्थिति मात्र से ही वो स्थान पवित्र हो जाते हैं।

**यत्र यत्र च मद्दक्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः ।
साधवः समुदाचारास्ते पूयन्तेऽपि कीकटाः ॥**
(भागवत 7.10.19)

मेरे शान्त, समदर्शी और सुख से सदाचार पालन करने वाले प्रेमी भक्त जन जहाँ-जहाँ वास करते हैं, वे स्थान चाहे कीकट ही क्यों न हों, पवित्र हो जाते हैं।

श्रीधरी- सम्यग् उत्तम आचारो येषां ते कीकटा अपि देशास् तत् तुल्य-
वंशश् च पूयन्ते शुद्धा भवन्ति।

उत्तम आचरण वाले मेरे भक्तजन जहाँ रहते हैं वे कीकट देश भी पवित्र हो जाते हैं।

आज की स्थिति और परिवेश जितना पचास साल में बदला है ऐसा पहले तो था भी नहीं, पाँच घंटे में जो आज कोई विश्व के दूसरे देशों में पहुँच

जाता है जहाँ जाने में पहले महीनों लगते थे। विदेशों के हजारों लाखों हिन्दू आदि परिवार सदाचार, सात्त्विकता और सनातन धर्म का पालन कर रहे हैं। पूर्व की भाँति अब ब्राह्मण, गुरु और आचार्यचरणों को किसी यात्रा के कष्ट का सामना ही नहीं करना पड़ता। अनगिनत मंदिर खुल चुके हैं, कितने ही लोग धर्म की स्थापना का प्रयास कर रहे हैं। कितने ही परिवारों में अपरस सपरस की व्यवस्था भी है।

पूर्वपक्षी यह कहते हैं कि म्लेच्छों के यहाँ भोजन करके उन आचार्य का ब्राह्मणत्व नाश हो चुका है। शास्त्र ने ब्राह्मण के कर्मों की कई जगह अलग-अलग चर्चा करी है, परन्तु पद्मपुराण में ब्राह्मण के म्लेच्छों के यहाँ भोजन करने और म्लेच्छ स्त्री आदि से सहगमन करने के बारे में विस्तार से बताया है, जिसको आगे बताया जाएगा। क्योंकि वैसे तो वर्तमान समय में विदेशों में इतने सनातनी हिन्दू अपनी परम्पराओं का निर्वाह कर रहे हैं कि वो म्लेच्छों के यहाँ भोजन करते ही नहीं हैं क्योंकि शास्त्र उनको म्लेच्छ बोलता ही नहीं है। फिर भी हमने सोचा आपको इस विषय पर कुछ शास्त्र वचन भी दे दें।

अंत्यजातिषु म्लेच्छेषु तथा चांडालजातिषु।
 पतितो वान्योनिभ्यां न हंतव्यः कथंचन ॥
 सर्वजातिस्त्रियं गत्वा सर्वाभक्ष्यस्य भक्षणात्।
 द्विजत्वं न विनश्येत पुण्याद्विप्रो भवेत्पुनः ॥
 (पद्म पुराण 1.47.21-22)

यदि कोई ब्राह्मण शूद्रों में, म्लेच्छों में तथा चांडाल गति वालों में भोजन तथा योनि सम्बन्ध के द्वारा मिल जाय, तो भी उसका वध नहीं करना चाहिए। सभी जाति के स्त्रियों के साथ सहगमन करके सर्वभक्षी हो जाने

पर भी ब्राह्मणत्व का नाश नहीं होता है। वह ब्राह्मण पुण्य कर्म करके पुनः विप्र हो सकता है ॥22॥

नारद देव ब्रह्मा से पूछते हैं,

ईदृशं दुष्कृतं कृत्वा पश्चात्पुण्यं समाचरेत्।
कां गतिं यात्यसौ विप्रः सर्वलोकपितामह ॥

(पद्म पुराण 1.47.23)

इस तरह का पाप करके बाद में पुण्यकर्म करके हे सम्पूर्ण लोकों के पितामह ! वह किस-किस गति को प्राप्त करता है ?

तब ब्रह्मा उत्तर देते हैं,

कृत्वा सर्वाणि पापानि पश्चाद्यस्तु जितेन्द्रियः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः पुनर्ब्रह्मात्यर्थति ॥

(पद्म पुराण 1.47.24)

सभी पापों को करके जो बाद में जितेन्द्रिय हो जाता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है और फिर ब्रह्मत्व को प्राप्त कर लेता है।

तो अगर कोई ब्राह्मण या आचार्य किसी अज्ञात कारण से अपगामी भी हो गए, परंतु अगर वे जितेन्द्रिय हैं तो ब्रह्मत्व उनमें प्रतिष्ठित रहता है जिससे उनको उनकी जाति से च्युत नहीं माना जाता है।

किन्हीं विशेष पापों का प्रायश्चित बताया गया है, जिसमें हमने म्लेच्छ देशों पर जाने पर कुछ यज्ञों के विधान की चर्चा पूर्व में करी है। अगर कोई

विदेश गया भी है या म्लेच्छ है, तो शास्त्र उनके लाभ हेतु कुछ प्रिय वचन भी बोलता है जो धर्मस्मृतियों से अलग है,

**देशे वा यदि वारण्ये विदेशे यदि वा गृहे ।
प्रयागं स्मरमाणस्तु यस्तु प्राणान् परित्यजेत्॥
ब्रह्मलोकमवाप्नोति वदन्ति मुनिपुड़गवाः ।
सर्वकामफला वृक्षा मही यत्र हिरण्मयी॥**
(कूर्म पुराण, प्रयाग माहात्म्य, 37-38)

मनुष्य अपने देश में हो या विदेश में, घर में हो या वन में यदि प्रयागराज का स्मरण करके प्राण त्याग करता है तो वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है, ऐसा मुनिवरों का कथन है।

**देशस्थो यदि वाऽरण्ये विदेशस्थोऽथवा गृहे।
प्रयागं स्मरमाणोऽपि यस्तु प्राणान्परित्यजेत्॥
ब्रह्मलोकमवाप्नोति वदन्ति ऋषिपुड़गवाः॥**
(मत्स्य पुराण 8.105)

अपने देश में हो, जंगल में हो, विदेश में हो अथवा अपने घर पर हो, कहीं भी हो, प्रयाग तीर्थ का स्मरण करते हुए जो प्राणों को छोड़ता है, वह परम पुनीत ब्रह्मलोक की प्राप्ति करता है ऐसा महर्षिगण कहते हैं।

**यानपात्रे च याने च प्रवासे राजवेशमनि ।
परां सिद्धिमवाप्नोति सावित्रीं ह्युतमां पठन् ॥ ।**
(महाभारत, अनुशासन पर्व)

जो मनुष्य किसी जहाज या यान में, विदेश में या राजदरबार में जाने पर, मन ही मन उत्तम गायत्री मंत्र का जाप करता है, वह परम सिद्धि को प्राप्त होता है।

**प्रवदन्तीह विद्वांसः परमात्मालयं गिरिम् ।
योजनानां सहस्रान्ते द्वीपान्तरगतोऽपि वा ॥
या नमत् भूधरेन्द्रं तदिशमुद्दिश्य भक्तितः ।
सर्वपापविनिर्मक्तो विष्णलोकं स गच्छति ॥
(स्कन्द पुराण, वेङ्कटाचल महिमा 56-57)**

जो भक्तिमाव से, हजारों योजन दूर किसी दूसरे द्वीपान्तर में रहकर भी उस दिशा को लक्ष्यकर श्रीवेङ्कटाचल पर्वत को प्रणाम करता है वह सब पापों से मुक्त होकर विष्णु लोक में चला जाता है।

**भक्तिरष्टविधा ह्येषा यस्मिन् म्लेच्छोऽपि वर्तते।
स विप्रेन्द्रो मुनिः श्रीमान् स याति परमां गतिम् ॥
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा हरिः ।
पुनाति भगवद्वक्तव्यण्डालोऽपि यदृच्छया ॥
(गरुड़ पुराण 1.227.9-10)**

यदि म्लेच्छ भी उक्त आठ भक्ति का अधिकारी हो जाये, तब वह विप्रप्रवर मुनि होकर परमगति लाभ करता है। जो व्यक्ति प्रकृत विष्णुभक्ति का पात्र है, भले ही वह म्लेच्छ क्यों न हो, उसे हरिमन्त्र दिया जा सकता है। उस व्यक्ति को प्रकृत विष्णुभक्ति का पात्र कहा गया है। वह म्लेच्छ भले ही हो, उसे हरिमन्त्र देना चाहिये। उससे लोग हरिभक्ति का उपदेश ले सकते हैं। वह हरिभक्ति विष्णुवत् पूज्य है। उस व्यक्ति से वार्ता करने अथवा उसकी

स्मृति से ही हरि के प्रति प्रीति जन्म लेती है। यदि चाण्डाल भी भगवान् का भक्त हो, तब वह यथेच्छरूप से जगत् को पवित्र कर देता है।

**पुल्कसः श्वपचो वापि ये चान्ये म्लेच्छजातयः ।
तेऽपि वंद्या महाभागा हरिपादैकसेवकाः ॥**
(पद्म पुराण 3.50.10)

हे महाभागों ! श्री हरि के चरणों की सेवा करने वाले पुल्कस, चाण्डाल तथा दूसरे म्लेच्छ जाति के भी लोग वंदनीय हैं।